दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९४ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २४ अंक नं० ६

सिद्ध भगवान के साथ....

साधक कहता है कि—हे सिद्ध भगवान! आपको साथ रखकर मैं सिद्धपद में आ रहा हूँ! प्रभो! मेरी साधकदशा में आप मेरे साथ ही हैं। आपको अपने अंतर में विराजमान करके मैं सिद्धपद को साधने चला हूँ। प्रभो! रागादि परभावों का साथ तो मैंने छोड़ दिया है और परम स्वभावरूप सिद्धपद का साथ किया है; मेरी साधना में अब भंग नहीं पड़ेगा; क्योंकि जहाँ अंतर में सिद्ध विराजमान हैं, वहाँ मोह क्यों होगा? अंतर में मैंने अपने चिदानंदस्वभाव की ओर झुककर सिद्ध भगवान का साथ किया है और परभावों से भिन्न हुआ हूँ; अब मैं सिद्धालय में अनंत सिद्ध भगवंतों के साथ बैठनेवाला हूँ। *(समयसार के मंगल-प्रवचन से)*

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

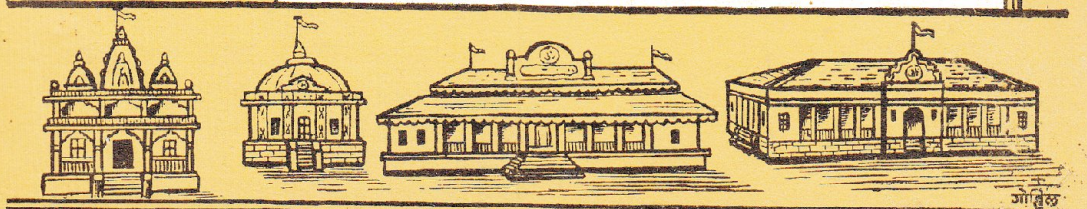

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अक्टूबर १९६८ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२८२) एक अंक २५ पैसा [आश्विन सं० २४९४

आत्मधर्म

आजीवन सदस्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्याद विकसित बने और उसके स्थायी ग्राहकों को हर साल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुभीता रहे। अत: ऐसा निर्णय किया गया है कि—१०१) रुपये लेकर 'आजीवन सदस्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अत: जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—
मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आजीवन सदस्य

८– श्री प्रेमचंद चतरलाल जैन, दिल्ली
९– श्री दिगम्बर जैन मंदिर, झूमरीतलैया
१०– श्री जुमरुमलजी पांड्या, गौहाटी–१
११– श्री भंवरलाल जैन, गौहाटी
१२– श्री नेमीचंद्र जैन, गौहाटी
१३– श्री कैलाशचंदजी जैन, भिंड
१४– श्री प्रकाशचंदजी जैन, उज्जैन
१५– श्री नेमीचंदजी पाटनी, जयपुर
१६– श्रीमती रतनलालजी शेठी, इंदौर
१७– श्री भ. ला. ठोलीया, बम्बई–५५
१८– श्री राजमलजी जैन, कुचामन सिटी
१९– श्री विमलप्रभा देवी परवार, इंदौर सिटी
२०– श्री पदमचंद जैन, आगरा
२१– श्री जैसराजजी कालुरामजी जैन, नीमच कैंट

१०१) के स्थायी सदस्य बनने वाले सज्जनों को फिर वार्षिक मूल्य नहीं देना पड़ता। आप भी स्थायी सदस्य बनकर धर्म प्रचार में सहयोगी बन सकते हैं। —प्रकाशक

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

अक्टूबर : १९६८ ☆ आश्विन, वीर नि०सं० २४९४, वर्ष २४ वाँ ☆ अंक : ६

सोनगढ़ में विशाल सम्मेलन

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के प्रवचन में एक ओर 'समयसार' तथा दूसरी ओर 'प्रवचनसार' ....मानों अनेकांतमय जिनवाणीरथ के दो पहिये! इन दोनों पहियों पर जिनवाणी का रथ आज भी मोक्षमार्ग की ओर दौड़ रहा है। समयसार का मंगलाचरण अर्थात् सिद्धपद की धुन... और प्रवचनसार का मंगलाचरण अर्थात् पंचपरमेष्ठी की धुन। दोनों के प्रवचन (सवेरे-दोपहर को) एक साथ चलने से सोनगढ़ में तो मानों सिद्धभगवंतों तथा पंचपरमेष्ठी भगवंतों का विशाल मंगल सम्मेलन हो रहा हो!—ऐसा वातावरण वर्त रहा है। पूज्य स्वामीजी श्रोताओं को ऐसे भाव में झुलाते हैं कि जिसे मोक्ष लेना हो, वह चला आये इस सम्मेलन में। मोक्ष का वह मंगलमंडप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी द्वारों से एवं वीतरागचारित्ररूपी तोरणों से शोभायमान है। जो आत्मार्थी पंचपरमेष्ठी तथा सिद्धभगवंतों को साथ लेकर इस मेले में आया, वह मुमुक्षु अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा।

स....म....य....सा....र

[१६वीं बार के प्रवचनों का मंगल-प्रारंभ]

श्री समयसार पर १६वीं बार के प्रवचनों का मंगल-प्रारंभ आश्विन कृष्णा १ के दिन हुआ। 'समयसार' अर्थात् शुद्धआत्मा, उसके भावों का पुनः पुनः मंथन करने से मुमुक्षु के हृदय में सुख की ऊर्मियाँ जागृत होती हैं। आत्मा का साध्य ऐसा जो सिद्धपद, उस सिद्धदशा को प्राप्त सिद्ध भगवंतों को आत्मा में ध्येयरूप से स्थापित करके समयसार का मंथन करने से मोह का नाश हो जायेगा—ऐसे आचार्यदेव के वचन सहित इस समयसार को हे भव्य जीवो! तुम भावपूर्वक सुनो!

नमः समयसाराय.... ऐसा कहकर शुद्ध आत्मा को नमस्काररूप अपूर्व मंगल किया है। जगत में साररूप शुद्ध आत्मा है, उसका स्वरूप इस शास्त्र में कहेंगे, उसे हे भव्य जीवों! तुम सुनो। कैसा है शुद्ध आत्मा? स्वानुभूति द्वारा ज्ञात हो ऐसा है। द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरहित शुद्ध है अर्थात् साररूप है। शुद्धनय के विषयरूप ऐसा शुद्ध आत्मा ही साररूप है, वही ध्येयरूप है, इसलिए उसे ध्येयरूप स्थापित करके नमस्कार किया है। जो भव्य शुद्धात्मा की ओर उन्मुख हुआ, वह भाव मंगलरूप है।

इष्टदेव कौन?—कि समयसाररूप शुद्ध आत्मा ही इष्टदेव है, उसे यहाँ नमस्कार किया है। स्वानुभूतिगम्य ऐसे शुद्धात्मा को नमस्कार, वह अपूर्व मांगलिक है। शुद्ध आत्मा की अस्ति से वर्णन किया, उसमें रागादिक अशुद्धता की नास्ति आ ही गयी। जो पर्याय शुद्धात्मा की ओर झुकी, उसमें रागादि का अभाव हुआ। सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये ऐसे शुद्ध आत्मा के प्रति सावधान होकर उसे तू लक्ष में ले। शुद्ध द्रव्य के साथ पर्याय का मिलन करके उसे मैं नमन

करता हूँ—ऐसी परिणति, वह अपूर्व मंगल है।

ऐसा शुद्ध आत्मा है, वह भावरूप वस्तु है, शुद्धस्वरूप है; सिद्धदशा होने पर उसका अभाव नहीं हो जाता, परंतु अपनी चैतन्यसत्ता में वह भावरूप है। स्वसत्ता से भावरूप है, और परसत्ता से अभावरूप है। सत्तारूप वस्तु है, परंतु कैसी सत्ता? कि चैतन्यस्वभाव से भरपूर है। इस मंगलाचरण में शुद्ध आत्मद्रव्य, उसके गुण तथा उसकी निर्मल पर्याय—यह तीनों आ गये; और उन्हें प्रगट करने का उपाय भी बतलाया कि—स्वानुभूत्या चकासते अर्थात् स्वयं अपने अनुभवरूप क्रिया द्वारा प्रगट होता है। आत्मा स्वयं अपने को स्वानुभव द्वारा ही जानता है; विकल्प द्वारा, राग द्वारा, वाणी द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता।

अहा, चैतन्य वस्तु की कोई अपार शक्ति एवं अपार महिमा है। चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा, वह स्वानुभव से स्वयं अपने को जानता है। स्वानुभूतिरूप क्रिया द्वारा आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा जिसे प्रगट हुई, वह देव है, वह इष्ट पद है, वही साध्य है। उसे लक्ष में लेकर मंगलाचरण में नमस्कार किया है। जिसने शुद्ध आत्मा को नमन किया, वह राग को नमन नहीं करेगा; जिसने शुद्धात्मा को रुचि में लिया, वह राग की रुचि नहीं करेगा। राग से भिन्न होकर शुद्ध आत्मा को लक्ष में लिया, वहाँ साधकदशा हुई, अपूर्व मंगल हुआ। ज्ञान की दूज उगी, वह अब बढ़कर केवलज्ञान-पूर्णिमारूप होगी।

जैसे सिद्धपरमात्मा शुद्ध हैं, वैसा ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है। ऐसे शुद्ध स्वभावरूप से आत्मा को देखना—श्रद्धा करना—अनुभवना, सो सच्चा 'नमः समयसाराय' है। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा कैसा है, उसे जाने बिना सच्चा नमस्कार कहाँ से होगा? शुद्ध आत्मा की ओर पर्याय ढले, वह सच्चा नमस्कार है।

भगवान! तू कौन है? उसे जानने की यह बात है। जो सिद्ध और अरिहंत परमात्मा हुए, वे कहाँ से हुए?—आत्मा में ऐसा स्वभाव है कि उसे अनुभव द्वारा प्रगट करके वे परमात्मा हुए हैं; और इस आत्मा में भी ऐसा स्वभाव विद्यमान ही है, उसके सन्मुख होकर अनुभव करने से यह आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। भाई, ऐसे अपने आत्मा को तू प्रतीति में ले, उसकी पहिचान कर। ऐसे स्वभावसन्मुख होकर अनुभव करने से बीच में राग के भाग बिना सीधा आत्मा वेदन में आता है; ऐसे स्वसंवेदनरूप जो क्रिया है, वह धर्म है, वह आत्मा को प्रगट करने का उपाय है। ऐसी अंतर्मुख परिणति में भगवान आत्मा पूर्ण प्रगट होता है और उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों समा जाते हैं।

द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप आत्मा जैसा है, वैसा भगवान ने बतलाया है। भगवान के तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों शुद्ध हो गये हैं, विकार नहीं रहा है; इस आत्मा का भी शुद्धस्वभाव है। वह कैसे जाना जाता है ?—कि स्वानुभूतिरूप क्रिया द्वारा उसकी पहिचान होती है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय या साधन नहीं है। स्वानुभूति की क्रिया में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है; विकल्प उसमें नहीं आते।

स्वानुभव द्वारा आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है। इन्द्रियज्ञान द्वारा अथवा विकल्प द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होता है। भले ही मति-श्रुतज्ञान हो परन्तु स्वानुभूति द्वारा उससे आत्मा स्वयं अपने को स्पष्ट जान सकता है। अहा, ज्ञान द्वारा स्वयं अपने को जानना, उसमें कोई अपूर्व आनंद है। स्वयं अपने को जानने से अतीन्द्रिय सुख होता है, उसमें अन्य कोई साधन नहीं है। आत्मा साररूप इसलिए है कि उसे जानने से परम सुख होता है। आत्मा में सुख है और उसे जानने से सुख का वेदन होता है। बाह्य पदार्थों में सुख नहीं है और उनके समक्ष देखने से सुख का वेदन नहीं होता। अहा, ऐसा सुखस्वभावी आत्मा ही सर्व पदार्थों में साररूप उत्कृष्ट है। ऐसे आत्मा को लक्ष में लेकर नमस्कार किया, वह अपूर्व मंगल है।

शुद्ध आत्मा का स्वरूप लक्ष में लेकर नमस्कार करने से उसमें अनंत सिद्ध भगवंत तथा अनंत अरिहंत-तीर्थंकरों का भी समावेश हो जाता है, क्योंकि वे सब भी शुद्ध आत्मा हैं। रागादि मैल रहित वीतरागी शुद्धदशा जिसने प्रगट की, ऐसा आत्मा ही इष्टदेव है। 'समयसार' कहने से उसके अर्थ में पाँचों परमेष्ठी भगवान तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समावेश हो जाता है। सम+अय+सार; सम अर्थात् सम्यग्दर्शन, अय अर्थात् सम्यग्ज्ञान और सार अर्थात् चारित्र—ऐसे रत्नत्रयरूप परिणमित शुद्ध आत्मा, वह समयसार है, वह इष्ट है, उसे नमस्कार हो।

'समयसार' में तो आत्मा के गहरे गम्भीर भाव भरे हैं। आचार्य भगवान इस समयसार में जब अन्तर के अनुभव की बात लिखते होंगे, तब कैसा धन्य काल होगा !! जगत का भाग्य है कि ऐसे शास्त्र की रचना इस काल में हो गयी। जिन्हें साक्षात् भगवान की भेंट हुई, उन कुन्दकुन्दाचार्यदेव की अलौकिक दशा की क्या बात ! और टीका में अमृतचन्द्राचार्यदेव ने भी समयसार के अलौकिक भावों को खोला है। जिसप्रकार तीर्थंकर और गणधर की जोड़ी शोभायमान होती है, उसीप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य की जोड़ी जैनशासन में शोभायमान है। उनके द्वारा रचा गया यह समयसार शास्त्र तो साधक के हृदय का विश्रामस्थल है... ज्ञान और राग की भिन्नता का अलौकिक भेदज्ञान इसमें कराया है।

समयसार की महिमा करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि—हे भव्य! तू अपूर्वभाव से समयसार का श्रवण करना। शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाले संतों के हृदय से निकला हुआ यह शास्त्र शुद्धात्मा का अनुभव कराके भव का नाश करानेवाला है... आत्मा के अशरीरीभाव को दर्शानेवाला यह शास्त्र है। हे श्रोता! तू सावधान होकर (अर्थात् भावश्रुत को अंतर में एकाग्र करके) सुन... इससे तेरा मोह नष्ट हो जायेगा और तू परमात्मा बन जायेगा। इस शास्त्र की कथनी में से धर्मात्मा शुद्ध आत्मा को प्राप्त कर लेता है। शुद्ध आत्मा का अनुभव कराना, वह इस शास्त्र का तात्पर्य है। ऐसे शुद्धात्मा को ध्येयरूप से स्थापित करके उसे नमस्काररूप महामंगल-स्तम्भ स्थापित किया है।

इस मंगलाचरण में साध्य और साधक दोनों भाव समा जाते हैं। समयसाररूप जो शुद्ध आत्मा वह साध्य है और उसको नमस्काररूप साधकभाव है। ऐसी साधक-साध्य की संधिपूर्वक मोक्ष का माणिक-स्तम्भ स्थापित करके यह समयसार (१६वीं बार) प्रारंम्भ होता है।

❋ ❋ ❋

इस समयसार में दर्शाया हुआ जो शुद्ध-ज्ञायकभाव, उसके मंथन द्वारा आत्मा की परिणति अत्यंत शुद्ध होगी। बीच में विकल्प आये, उस पर या वाणी पर लक्ष मत रखना, परंतु उसके वाच्यरूप जो ज्ञायकभाव, उस पर लक्ष रखना-उस ओर ज्ञान को एकाग्र करना। राग का उत्साह मत रखना, ज्ञायकस्वभाव का ही उत्साह रखना। ज्ञायकभाव के प्रेम से तुझे परम सुख होगा। ऐसे आशीर्वाद सहित समयसार सुनाते हैं।

केवलज्ञान और भावश्रुत ज्ञान दोनों को एक जाति है। जैसे आत्मा को केवलज्ञान देखता है, वैसे ही आत्मा को स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष द्वारा श्रुतज्ञान भी देखता है। श्रुतज्ञान की भी महान शक्ति है; श्रुतज्ञान भी राग के अवलंबनरहित है। श्रुतज्ञानरूप साधकपर्याय भी अंतर में अपने पूर्ण ध्येय को ग्रहण करके उसका अवलंबन लेनेवाली है। श्रुतज्ञान की आँख इतनी विशाल है कि परमात्मा समान पूर्ण शुद्ध आत्मा को वह देख लेती है। वह श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान जैसा ही निःशंक है। अहा, श्रुतज्ञानी साधक भी केवलज्ञानी परमात्मा की पंक्ति में बैठनेवाला है।

टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यदेव स्वयं महासमर्थ मुनि हैं; तीन कषायों के अभावरूप शुद्धता तो उनके प्रगट हो ही गयी है, मात्र किंचित् संज्वलन कषाय शेष है; उसका भी नाश होकर परम विशुद्धि अर्थात् वीतरागता और केवलज्ञान हो-ऐसी भावना से कहते हैं कि—अहो! इस समयसार की व्याख्या से अर्थात् उसमें कहे हुए वाच्यरूप शुद्ध आत्मा के मंथन से मेरी अनुभूति परम शुद्ध हो जायेगी। मैं शुद्ध चिन्मात्र हूँ—ऐसे अपने स्वभाव के मंथन से परिणति पूर्णानंदरूप शुद्ध हो जायेगी। ऐसा कहकर समयसार के मंथन का फल भी बतलाया, पर्याय में अशुद्धता शेष है, उसका भी स्वीकार किया; उसे हटाकर पूर्ण शुद्धता का उपाय भी बतलाया; शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वभाव का मंथन करनेरूप शास्त्र-तात्पर्य भी बतलाया। यह शास्त्र सुनकर क्या करना? कि शुद्ध चिन्मात्र आत्मा का मंथन करना चाहिये। विकल्प का या राग का मंथन नहीं करना, उसके लक्ष में नहीं रुकना, परन्तु लक्ष को वाच्यरूप शुद्ध आत्मा में लगाकर उसका मंथन करना... ऐसा करने से ही साधकदशा प्रगट होती है, और बढ़कर पूर्ण होती है।

अहा, मुनिराज को अधिक शुद्धता तो हुई है, परंतु अभी किंचित् कषायकण होने से परिणति में मलिनता है, वह भी सालती है, इसलिये उसका नाश करके पूर्ण शुद्धता की भावना है; और वह पूर्ण शुद्धता मेरे शुद्धचिन्मात्र स्वभाव के मंथन से ही होगी, ऐसी प्रतीति है। विकल्प का तो नाश करना चाहते हैं तो वह शुद्धता का साधन कैसे होगा? शुद्धता का साधन विकल्प नहीं होता; शुद्धस्वभाव का मंथन ही शुद्धता का साधन होता है।

अहा, यह तो समयसार है, अकेले शुद्ध आत्मा का मंथन है... पद-पद में—पर्याय-पर्याय में शुद्धात्मा की रटन है। शुद्ध आत्मा को जानते ही सच्चा ज्ञान और सुख होता है। सुख तो आत्मा में है, उसके सन्मुख होकर उसे जानने से सुख का अनुभव होता है; अन्य कोई सुख का मार्ग नहीं है। शुद्ध आत्मा के लक्ष से इस समयसार के श्रवण का फल उत्तम सुख है। अन्त में आचार्यदेव कहेंगे कि:—

यः समयप्राभृतमिदं पठित्वा अर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स भविष्यत्युत्तमं सौख्यम॥४१५॥

जो आत्मा (भव्य जीव) इस समय-प्राभृत को पढ़कर, अर्थ और तत्त्व से जानकर, उसके अर्थ में स्थित होगा, वह उत्तम सौख्यस्वरूप हो जायेगा। ●

सच्चे ज्ञान का ही सच्चा फल आता है

[मिथ्याज्ञान का सच्चा फल नहीं आता, इसलिये प्रथम आत्मा का सच्चा ज्ञान करना चाहिये।]

आत्मा अनंत शक्तिवान है; उसकी प्राप्ति के लिये अर्थात् उसके अनुभव के लिये उसका सच्चा स्वरूप समझना चाहिये; उसमें उत्साह होना चाहिये। उस चैतन्यस्वभाव की ओर उत्साह के बल से परिणाम उसमें एकाग्र होने पर विकल्प टूट जाते हैं और निर्विकल्प अनुभव होता है। जिसप्रकार हीरा लेनेवाला पहले उसकी परीक्षा करता है और मूल्य जान लेता है। हीरे के बदले काँच का टुकड़ा या नीम की निबोली वह नहीं लेता... उसीप्रकार जिसे चैतन्य-चिंतामणि प्राप्त करना हो, उसे ज्ञानी के उपदेश अनुसार उसका मूल्य जानना चाहिये, उसकी अनंतशक्ति की महिमा जानना चाहिये और अंतरवेदनसहित परीक्षा करके उसका स्वरूप समझना चाहिये। जड़ या राग को चैतन्यस्वरूप मान ले तो सच्चा आत्मस्वरूप समझ में नहीं आ सकता। कोई निबोली को नीलमणि मान ले तो ? उसीप्रकार कोई जीव राग को आत्मा मान ले तो ?—तो उस विपरीत मान्यता का सच्चा फल नहीं आयेगा। कोई विष को मिश्री मानकर खाये तो कहीं वह मीठा नहीं लगेगा, कड़वा ही लगेगा; उसीप्रकार कोई विकार को आत्मस्वरूप मानकर उसका वेदन करे तो कहीं उसे आत्मा की शांति का वेदन नहीं होगा, आकुलता का ही वेदन होगा। इसलिये आत्मस्वरूप को यथार्थरूप से बराबर समझना चाहिये। सच्चे ज्ञान का ही सच्चा फल आता है। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा आत्मा कहा, वैसा जाने बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यक्चारित्र भी नहीं होता; क्योंकि अपने स्वरूप को जाने बिना स्थिरता कहाँ करेगा ? और स्वरूपस्थिरता के बिना मुक्ति हो नहीं सकती।

पूर्ण सुख मोक्ष के बिना नहीं।
मोक्षदशा चारित्र के बिना नहीं।
चारित्रदशा सम्यक्त्व के बिना नहीं।
सम्यक्त्व शुद्धात्मा की पहिचान के बिना नहीं।

—इसलिये मोक्षार्थी को पहले अत्यन्त उद्यमपूर्वक शुद्ध आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानना चाहिये।

[—'आत्मवैभव' गुजराती से]

आत्मा का ज्ञान होते ही आस्रव छूट जाते हैं

[समयसार कर्ताकर्म अधिकार]

(सुरेन्द्रनगर-वढवाण-जोरावरनगर में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से)

वीर सं० २४९४ वैशाख कृष्णा ३ से १३

सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा को 'भगवान' कहा है; क्योंकि वह स्वयं महिमावंत पदार्थ है। ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उसे ज्ञानमात्रभाव में बंधन नहीं है, विकार नहीं है, मलिनता नहीं है। अशुभ पापराग या शुभ पुण्यराग—वे दोनों मलिन बंधभाव हैं, वे चेतनारहित होने से जड़ हैं, वे स्वयं अपने को या अन्य को नहीं जानते। और आत्मा तो स्वयंप्रकाशी स्व-पर को जाननेवाला चेतनस्वभावी है। इसप्रकार दोनों की भिन्नता का ज्ञान होते ही आत्मा उन रागादि आस्रवों को पराये जानकर तत्क्षण उनसे विमुख होता है और उनसे पृथक् होकर ज्ञानभावरूप परिणमित होता है; इसलिये उसे बंधन नहीं होता। पहले राग से प्रेम था, उसके बदले अब पहिचान होने पर अपना ज्ञान ही प्यारा लगा। मैं तो ज्ञान ही हूँ, ज्ञान से अन्य कोई भाव मैं नहीं हूँ;—ऐसा भेदज्ञान ही बंध से छूटने का कारण है।

आत्मा और रागादि भिन्न हैं।—किसप्रकार? वह दृष्टांत से समझाते हैं। जिसप्रकार पानी में जो काई है, वह पानी नहीं है, पानी तो काई से भिन्न स्वच्छ है; पानी स्वच्छ है और काई मैल है—दोनों भिन्न हैं। उसीप्रकार रागादि आस्रवभाव, वे आत्मा के चैतन्यस्वभाव से भिन्न हैं; रागादि, वह चैतन्यभाव नहीं है, चैतन्यतत्त्व तो राग से भिन्न स्वच्छ स्व-पर प्रकाशक है। वह पवित्र है और रागादि मैल है—इसप्रकार दोनों की भिन्नता है।

आत्मा चैतन्यस्वभावरूप से अनुभव में आता है। रागादिभाव वे चैतन्यस्वरूप के अनुभव में नहीं आते परंतु मलिनता एवं आकुल स्वादरूप से अनुभव में आते हैं। आत्मा के अनुभव में आकुलता नहीं होती, आत्मा का अनुभव तो परम शांत आनंदरूप है।—इसप्रकार राग से भिन्नरूप आत्मा का अनुभव ज्ञान द्वारा होता है। ऐसी भिन्नता जिस ज्ञान ने जान ली, वह

ज्ञान रागादि के साथ एकता नहीं करता परंतु उसे अपने से भिन्न जानता हुआ आस्रवों से निवर्तता है; वहाँ कर्म का आस्रव नहीं होता। इसलिए ज्ञान ही कर्मबंधन से छूटने का उपाय है। अहो, सर्वज्ञभगवान ने आत्मा को 'भगवान' कहा है। जिसप्रकार माता अपने पुत्र को लोरियाँ गा-गाकर उसे सुलाती है, उसीप्रकार जिनवाणी माता आत्मा को उसके गुणगान की लोरियाँ गाकर जगाती है कि—अरे जीव! तू भगवान है... तू पवित्र है... तू आनंदरूप है... भाई, तू अपने निजगुणों से प्रेम कर, राग में तेरी शोभा नहीं है। अपने गुणों की महिमा भूलकर अनादि से जीव राग के प्रेम में रुक रहा है, अपने आत्मा का रागरूप ही अनुभव कर रहा है—वही भवभ्रमण का कारण है। अपना स्वभाव रागरहित होने पर भी रागसहित अनुभव करता है, परंतु भूतार्थस्वभाव रागरहित शुद्ध है—ऐसा अनुभव और भेदज्ञान करना वह मोक्ष का कारण है।

❀ ❀ ❀

रागादि आस्रवभाव आकुलतारूप हैं और दुःख के तथा बंध के कारण हैं। राग से भिन्न चैतन्य भगवान आत्मा तो निराकुल आनंदरूप है, वह दुःख का कारण नहीं है। आत्मा का अनुभव निराकुल शांत सुखरूप है, उसमें दुःख नहीं है। भाई, तुझे सुखी होना हो तो आनंदमूर्ति अपने आत्मा के सन्मुख देखना पड़ेगा। राग तो दुःख का घर है, उसके समक्ष देखने से तुझे सुख प्राप्त नहीं होगा। सुख का धाम तो आत्मा है, उसमें उपयोग लगाने से परम सुख का अनुभव होता है।

श्रीमद् राजचंद्र का वचन है कि—'दुःख का कारण मात्र विषमात्मा है; और वह यदि सम है तो सर्वत्र सुख ही है।' विषम आत्मा अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वही दुःख का कारण है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई दुःख का कारण नहीं है। रोग, निर्धनता आदि बाह्य संयोग कहीं दुःख का कारण नहीं हैं; राग-द्वेष-मोहरूप जो विषमता, वही दुःख का कारण है।

भगवान आत्मा किसी का कारण-कार्य न होने से दुःख का अकारण है। पिछली बार जब सम्मेदशिखर की यात्रा को गये थे, तब यह बात प्रवचन में आयी थी। आत्मा ज्ञानमूर्ति है, उसे अन्य कोई कारण नहीं है; राग कारण होकर आत्मा की प्राप्ति कराये, ऐसा नहीं है; तथा आत्मा कारण होकर राग को अपना कार्य बनावे, ऐसा भी नहीं है। रागादिक के साथ आत्मा को कारण-कार्यपना नहीं है। राग को तो दुःख के साथ कारण-कार्यपना है। भगवान आत्मा स्वयं सुखरूप है, उसे सुख के लिये अन्य किसी के साथ कारण-कार्यपना नहीं है; तथा दुःख का

कार्य-कारणपना भी उसमें नहीं है। आत्मा की प्राप्ति दु:ख द्वारा (राग द्वारा) नहीं होती, निराकुल ज्ञान द्वारा आत्मा अनुभव में आता है।

भाई, प्रथम आत्मा को समझने के लिये उसकी मिठास आना चाहिये। अन्य बातों की गन्ध (रुचि) छोड़कर समझना चाहे तो आत्मा की सुगन्ध आये अर्थात् अनुभव हो। नाक में दुर्गन्ध की गोली भर रखी हो, उसे फूल की सुगन्ध कहाँ से आयेगी? यदि दुर्गन्ध निकाल दे तो सुगन्ध का अनुभव हो। उसीप्रकार चैतन्य के परम आनंद की यह मीठी-मधुर बात है... परंतु जिसने परभाव की रुचिरूपी दुर्गन्ध भर रखी है, उस जीव को स्वभाव के आनंद की सुगन्ध का अनुभव नहीं होता। भाई! राग और ज्ञान दोनों की जाति ही भिन्न है—ऐसा समझकर राग की रुचि छोड़ और ज्ञानानंदस्वभाव की रुचि कर, तो तुझे अपने स्वभाव के अपूर्व सुख का अनुभव होगा। अपने ज्ञान की रुचि के सिवा अन्य किसी कारण से सुख की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् धर्म नहीं होता। ऐसे शुद्ध ज्ञान की रुचि और पहिचान के बिना शुभाशुभ क्रियाकाण्ड सब व्यर्थ हैं। शुद्धज्ञान की प्रतीति के बिना देव-गुरु-धर्म की शुद्ध श्रद्धा भी नहीं होती। देव-गुरु ने राग को बंध का कारण कहा है, उसके बदले राग को धर्म का कारण मानकर उसका सेवन करे, उस जीव ने देव-गुरु को नहीं माना है। भाई, इस समय इस शुद्ध आत्मा की श्रद्धा करने का अवसर आया है। 'फिर करूँगा'—ऐसा वादा मत करना। जिसकी रुचि हो, उसमें वादा नहीं होता। पैसे की रुचिवाला ऐसा नहीं कहता कि अभी पैसे की जरूरत नहीं, फिर धीरे-धीरे कमाऊँगा! वहाँ तो यदि एक साथ लाखों-करोड़ों मिल जायें तो ले लेना चाहता है। तो जिसे आत्मा की सच्ची रुचि जागृत हुई हो, उसके भाव में ऐसा नहीं आता कि अभी आत्मा नहीं समझना है, फिर धीरे-धीरे समझ लूँगा; परतु उसके भाव में तो ऐसा आता है कि इसी समय आत्मा को समझकर उसमें एकाग्रता कर लूँ। जहाँ रुचि हो, वहाँ काल की अवधि अच्छी नहीं लगती। चैतन्य के बिना एक क्षण भी चैन न पड़े—ऐसी जिसे लगन लगी है, उसके लिये यह बात है और यह बात समझने पर ही दु:ख की भट्ठी से निकला जा सकता है। शुभ या अशुभ तो सब आकुलता की भट्ठी है, उसमें कहीं शांति नहीं है।

अरे, जिसे राग में आनंद आता है, वह तो राग से पृथक् होकर आत्मा का अनुभव कहाँ से करेगा? भगवान तो कहते हैं कि—आत्मा ही स्व-पर का प्रकाशक चेतन है और रागादि आस्रव तो चेतन से रहित हैं, वे स्व को या पर को नहीं जानते; इसलिये उन्हें जड़स्वभाव कहा

है; चेतनस्वभाव से उनकी भिन्नता है। राग स्वयं अपने को नहीं जानता, परन्तु राग से भिन्न ऐसा ज्ञान ही राग को जानता है। ऐसी ज्ञान और राग की भिन्नता को लक्ष में भी न ले, वह अंतर में भेदज्ञान करके अनुभव तो कहाँ से करेगा ? और भिन्न ज्ञान के अनुभव बिना उसे धर्म कहाँ से होगा ? ज्ञान का राग से भिन्न परिणमन हो, वही धर्म का और मोक्ष का कारण है। ज्ञान और राग की भिन्नता को जिस क्षण जानता है, उसी क्षण जीव राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप परिणमित होता है। कोई कहे कि भेदज्ञान तो हुआ परंतु आनंद का अनुभव नहीं हुआ;—तो ऐसा हो ही नहीं सकता। यदि ज्ञान राग से भिन्न होकर परिणमित न हो और राग के साथ ही एकमेकरूप से परिणमित होता रहे तो उस जीव को यथार्थ भेदज्ञान नहीं हुआ है, वह मात्र भेदज्ञान की बातें करता है। यदि यथार्थ भेदज्ञान हुआ हो तो ज्ञानी राग में क्यों अटकते हैं ? भेदज्ञान का काम तो यह है कि ज्ञान का और राग का भिन्नरूप अनुभव करे। आत्मा की ज्ञान के साथ एकता और राग से भिन्नता का अनुभव करे। ऐसे अनुभवरूप भेदज्ञान होने पर आस्रव छूट जाते हैं। पहले अज्ञान से आत्मा रागादि में तन्मयरूप से प्रवर्तन करता था, वह अब भेदज्ञान होते ही ज्ञानरूप से परिणमित होता हुआ रागादिभावों से निवर्तता है; इसलिये उसे बंधन नहीं होता। इसप्रकार भेदज्ञान, वह बंधन से छूटने तथा मोक्ष प्राप्त करने का उपाय है।

रे आत्मन्! तूने यह मनुष्यभव काकतालीयन्याय से प्राप्त किया है; इसलिये अब तुझे अपने में अपना निश्चय करके अपना कर्तव्य सफल करना चाहिये। —श्रीमद् राजचंद्र

तलोद (गुजरात) में
शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन

तारीख २३-९-६८ से ४-१०-६८ तक तलोद में विशाल शिक्षण-शिविर का आयोजन श्री बाबूभाई फतेहपुरवालों के नेतृत्व में तलोद दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा किया गया था। शिविर का उद्घाटन माननीय श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी के शुभहस्त से हुआ। सोनगढ़ के विद्वान पंडित श्री खीमचंदभाई तथा श्री चिमनलालभाई पधारे थे और प्रतिदिन आध्यात्मिक-प्रवचनों एवं शंका-समाधान आदि से समाज ने अच्छा लाभ लिया था। विशेष अतिथि के रूप में सागर निवासी सेठ भगवानदास शोभालालजी पधारे थे।

बंधन से छूटकर मोक्ष प्राप्त करने की रीति

[मुमुक्षु को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष आत्मा के निश्चय का परमहितकर उपदेश]

(सुरेन्द्रनगर-वढवाण-जोरावरनगर में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से)

समयसार की यह ७३वीं गाथा अति सुंदर भावपूर्ण है। आत्मा का निर्णय करके उसका अनुभव कैसे हो, उसकी बात आचार्यदेव ने इसमें समझायी है। शिष्य पूछता है कि प्रभो! अज्ञानमय आस्रव दु:खदायक हैं और ज्ञान द्वारा उनसे छूटा जा सकता है; तो हे प्रभो! आत्मा को आस्रवों से छूटने की रीति क्या है ? वह समझाइये।

उसके उत्तर में आचार्यदेव इस गाथा में आस्रवों से छूटने की रीति बतलाते हैं:—

हूँ एक शुद्ध ममत्वहीन मैं ज्ञान-दर्शनपूर्ण हूँ;
उसमें रह स्थित लीन उसमें, शीघ्र यह सब क्षय करूँ ॥७३॥

पिछले वर्ष जयपुर में भी इस गाथा पर प्रवचन हुए थे। ज्ञानी अपने आत्मा का कैसा निश्चय करता है और कैसा अनुभव करता है, वह बतलाकर, वैसे निश्चय और अनुभव द्वारा आत्मा आस्रवों से छूटता है—ऐसी आस्रवों से छूटने की रीति समझाते हैं।

—परंतु यह बात किसे समझाते हैं ?—कि जिसे संसार की चार गतियों में दु:ख लगा है और उससे छूटने के लिये पुकारता हुआ आया है कि अरे! इन अनंत कालीन दु:खों का अब कैसे अंत आयेगा ? ऐसा क्या कार्य करूँ, ताकि इन दु:खों से आत्मा का छुटकारा हो और निराकुल शांति का वेदन हो! ऐसी जिज्ञासावाले शिष्य को आचार्यदेव यह बात समझाते हैं। आत्मा में अमृत बहने लगे, ऐसी यह बात है।

आत्मा शरीर से भिन्न चैतन्यतत्त्व है, उसमें अनंत ज्ञानशक्ति है। ऐसे शक्तिवान आत्मा की प्रतीति करके उसमें स्थिरता से परम सुख प्राप्त होता है; अपने स्वभाव का अवलंबन लेता हुआ आत्मा विज्ञानघन होकर रागादि आस्रवों को छोड़ देता है।

पहले अज्ञानभाव से रागादि को पकड़ता था कि—राग सो मैं; राग और ज्ञान मानों एकमेक हों—ऐसा अज्ञान से जबतक अनुभव करता था, तब तक आत्मा उन रागादि दु:खभावों से विमुख नहीं होता था; परंतु जब भेदज्ञान द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को जाना, तब

राग को अपने से भिन्न जानकर उसकी पकड़ छोड़ दी;—इसप्रकार आत्मा बंधभावों से निवृत्त होता है।

ऐसा आत्मा अपने में आत्मस्वरूप को कैसा निश्चय करता है, वह इस गाथा में समझाया है। सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये अपने आत्मा का कैसा निश्चय करना—उसकी परमहितकर बात संतों ने समझायी है। ऐसा आत्मनिर्णय करके, विकल्प तोड़कर अनुभव करता है, उसका निर्णय भी अपूर्व है।

प्रथम तो ऐसा निर्णय करता है कि—मैं यह आत्मा प्रत्यक्ष स्वसंवेदनगम्य हूँ। आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है। बाह्य साधनों द्वारा या राग द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता; अंतर्मुख उपयोग द्वारा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है।

प्रथम तो 'मैं कौन हूँ' उसका सच्चा निर्णय करने की यह बात है। धर्मी होना हो, उसे प्रथम यह निर्णय करना चाहिये कि मैं कौन हूँ? श्रीमद् राजचंद्रजी सोलह वर्ष की उम्र में कहते हैं कि—

हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारु खरुं?

मैं कौन हूँ? कहाँ से हुआ? आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या है? उसका निर्णय अरना, वह भव को छेदने तथा सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की क्रिया है। सम्यग्दर्शन की तैयारीवाला स्वभाव के आँगन में आया हुआ जीव कैसा आत्मनिर्णय करता है। उसकी बात है। प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ज्ञात होऊँ—ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा मैं हूँ,—ऐसा निर्णय करके अपने में उपयोग लगाने से विकल्प छूट जाता है और निर्विकल्प आनंदसहित सम्यग्दर्शन होता है—ऐसी रीति सर्वज्ञभगवान की वाणी में आयी है।

अहो, इस निर्णय में स्वलक्ष का बहुत बल है। यह निर्णय अन्य के लक्ष से नहीं किया। मैं स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हूँ अर्थात् राग द्वारा प्रत्यक्ष होऊँ, ऐसा मैं नहीं हूँ; इसप्रकार राग के—विकल्प के अवलम्बन की बुद्धि छूट गयी है और आत्मा के स्वभावसन्मुख बुद्धि हुई है, वह जीव उपयोग को स्वोन्मुख करके, विकल्परहित साक्षात् अनुभव करेगा।-यह सम्यग्दर्शन की रीति है।

एक मनुष्य करोड़ों-अरबों का वैभव पाकर अपने महल में बैठा हो और दूसरा बाहर खड़ा-खड़ा वैसे वैभव का विचार करता हो... इसप्रकार जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया वे तो

आत्मा के महल में बैठे-बैठे साक्षात् आनंद का अनुभव करते हैं और सम्यक्त्व के सन्मुख जीव आत्मा के स्वरूप का विचार द्वारा निर्णय करते हैं। आत्मा का सच्चा निर्णय करने में भी महान पुरुषार्थ है! भाई, जीवन में यही सचमुच करने जैसा है। आत्मा के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, उसे उसका अनुभव नहीं होता।

आत्मा अनादि है। एक भव छोड़कर दूसरा भव करते-करते उसने अनंत काल में अनंत भव धारण कर लिये हैं। पूर्व काल के भव की जीव को वर्तमान में भी याद आ जाती है, उसे जातिस्मरणज्ञान कहते हैं। इससमय इस सभा में राजुल नाम की एक सात वर्ष की बालिका बैठी है, उसे ढाई वर्ष की उम्र में पूर्वभव का स्मरण हुआ था कि—पूर्वभव में मैं जूनागढ़ में थी और मेरा नाम गीता था। इसप्रकार पूर्वभव की बात याद आना, वह कोई बहुत आश्चर्य की बात नहीं है। जिन्हें असंख्य वर्ष पूर्व का स्मरण है, ऐसे जीव भी वर्तमान में हैं। आत्मा तो नित्य है, वह कहीं इस शरीर जितना नहीं है। देखो, पूर्वभव का ज्ञान हो सकता है, उसकी एक युक्ति—दो आदमी हैं; उन में एक सौ वर्ष की उम्र का है और दूसरा पचास वर्ष का है। सौ वर्ष की उम्र का आदमी अपनी ९० वर्ष पहले की या ९८ वर्ष पहले की (स्वयं २ वर्ष का था तब की) बात जान सकता है, तो जिस आदमी की उम्र ५० वर्ष की है, वह अपनी ९८ वर्ष पहले की बात क्यों नहीं जान सकेगा? जीव की जाति तो एक ही है, इसलिये वह जरूर जान सकता है। अब, यदि वह ५० वर्ष की उम्र का आदमी अपनी ९८ वर्ष पहले की बात का स्मरण करे तो क्या होगा?—कि इस भव के साथ पूर्व के भव की सन्धि होगी और स्वयं इस भव से पूर्व कहाँ था उसका स्मरण होगा; इसलिये इस शरीर जितना ही आत्मा नहीं है परंतु वह शरीर से भिन्न, सब भवों में लगातार रहनेवाला है—ऐसे नित्य आत्मा को लक्ष में ले तो देहबुद्धि छूट जाये। यहाँ तो तदुपरांत अंतर में आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष करने की बात है।

अरे जीव! यह शरीर तो छूट जानेवाला है—यह निश्चित है; फिर संयोगों में रुचि कैसी? शरीर का भी संयोग जहाँ रहनेवाला नहीं है, वहाँ अन्य संयोगों की तो बात ही कहाँ रही? परंतु जीव अपने को भूलकर संयोगों में इसप्रकार मूर्च्छित हो रहा है कि उसे परभव का विचार भी नहीं आता। ज्ञानी तो शरीर को भिन्न ही देखता है, प्रतिक्षण आत्मप्रत्यक्ष ऐसे अपने आत्मा का शरीर से भिन्न ही वेदन करता है। आत्मा का स्वाद ही मैं हूँ, शरीरादि मैं नहीं हूँ और

राग का आकुलतामय स्वाद भी मेरा नहीं है; ज्ञान द्वारा स्वसंवेदन में आनंद का जो स्वाद आता है, वही मैं हूँ। ऐसे आत्मा का निर्णय करे तो मृत्यु का भय दूर हो जाये। भाई, यह मनुष्यभव तो क्षणिक-अल्पकालीन है, वह कोई हमेशा नहीं रहेगा; मृत्यु सामने ही खड़ी है, ऐसा समझकर तू सावधान होकर आत्महित की सँभाल कर। 'चेत चेत नर चेत!' शरीर तो इस समय भी पृथक् है और उसका संयोग छूट जानेवाला है। शरीर कहीं आत्मा की वस्तु नहीं है, शरीर का स्वामी जड़-पुद्गल है, आत्मा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि राग का स्वामी भी आत्मा नहीं है; आत्मा तो स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्षज्ञान का स्वामी है और वह मैं ही हूँ—इसप्रकार धर्मी अपने आत्मा का निर्णय करता है। आत्मा ऐसा विज्ञानघन है कि उसमें शुभ विकल्प का भी प्रवेश न हो सके। मात्र विज्ञानघनस्वभाव से नित्य स्थित रहनेवाला आत्मा मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है।

सदा विज्ञानघनस्वभावरूप से एक ऐसा मैं 'शुद्ध' हूँ, मेरी निर्मल अनुभूति सर्व कारकों के भेद से पार है। जड़ के कर्ता-कर्म आदि कारक तो आत्मा में कभी नहीं हैं; राग और विकल्प की क्रिया संबंधी कारक भी आत्मा की अनुभूति में नहीं हैं; और निर्णय पर्यायरूप क्रिया का मैं कर्ता हूँ, वह मेरा कर्म है, ज्ञान उसका साधन है—ऐसे निर्मल कारकों के भेद के विकल्प भी शुद्धात्मा की अनुभूति में नहीं हैं। उन विकल्पों से भी पार शुद्ध अनुभूतिमात्र मैं हूँ।

देखो, ऐसे आत्मा के निर्णय बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को दूसरे विकल्प बीच में आयें या न आयें, परंतु आत्मा का ऐसा निर्णय तो उसे अवश्य आता ही है। ऐसे निर्णय के पश्चात् अनुभव द्वारा सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शनरूपी दोज उगने के बाद उस जीव को केवलज्ञानरूपी शाश्वत् पूर्णिमा होती है।

अहो, आत्मा तो अपनी निर्मल अनुभूतिस्वरूप है, इसलिये वह शुद्ध है। निर्मल अनुभूति में विकल्प की अशुद्धता नहीं है, कर्ता-कर्म के भेद नहीं हैं। ऐसी अनुभूति में चैतन्य के महान स्वाद के समक्ष सारी दुनिया के रस छूट जाते हैं। चैतन्यानंद के निकट अन्य सब व्यर्थ है।—ऐसा निर्णय करे, उसे शुभ विकल्प का स्वामित्व अपने में भासित नहीं होता।

ज्ञानस्वभावी ऐसा मेरा आत्मा प्रत्यक्ष है, एक है, निर्मल अनुभूतिरूप शुद्ध है; वह क्रोधादि किन्हीं परभावों के स्वामीरूप परिणमित नहीं होता—उनमें एकरूप परिणमित नहीं होता, इसलिये मैं ममतारहित हूँ, परभाव का अंश भी मुझे स्व-रूप भासित नहीं होता। जिस

शुद्ध आत्मा का अनुभव करना है, उसे प्रथम निर्णय में तो लेना चाहिये न ? उस निर्णय की यह बात है।

क्रोधादि भावों के स्वामीरूप धर्मी का आत्मा परिणमित नहीं होता, वह तो क्रोध से भिन्न ज्ञान के ही स्वामीरूप परिणमित होता है। क्रोधादि भाव कहने से उसमें पाप और पुण्य दोनों भावों का समावेश कर लेना चाहिये। शुभराग का स्वामी होकर अज्ञानी स्वर्ग में भी दुःखी ही है। अरे, स्वर्ग में दुःख! हाँ भाई, उस संयोग में भी कहीं सुख थोड़े ही है। अंतर में परभाव के साथ की एकत्वबुद्धि जिसे बनी हुई है, वह जीव स्वर्ग में भी दुःखी ही है। सुख-दुःख कहीं संयोगों में नहीं है, अपने परिणामों में सुख-दुःख है। यहाँ तो अनादिकालीन अज्ञान एवं दुःख दूर करके आत्मा को सुखी कैसे करना, उसकी बात है।

आत्मा को सुखी करने के लिये उसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय और अनुभव करने की यह बात है। परभाव का एक अंश भी मेरे चिदानंदस्वरूप में नहीं है। ज्ञानभाव से परिपूर्ण ऐसा मैं ममतारहित हूँ, क्योंकि परभाव के एक अंश का भी स्वामित्व मुझमें नहीं है। राग के एक अंश से भी जो लाभ माने, उस जीव को अनंतराग की ममता है, निर्मम आत्मस्वभाव को उसने नहीं जाना। परभाव का एक अंश भी जिसमें नहीं समा सकता, ऐसे ज्ञान-दर्शनस्वभाव से परिपूर्ण मेरा आत्मा है। जिसप्रकार आकाश आदि द्रव्य अपने-अपने विशेष स्वभाव में स्थित हैं, परमार्थ वस्तु विशेष हैं, उसीप्रकार मैं अपने परिपूर्ण ज्ञान-दर्शनस्वभाव में स्थित परमार्थ वस्तु विशेष हूँ; अन्य द्रव्यों से असाधारण ऐसे अपने विशेष स्वभाव में—ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण स्वभाव में मैं सदा विद्यमान हूँ और रागादिरूप किंचित् नहीं होता। ऐसे आत्मस्वभाव का निश्चय करके उरसमें उपयोग निश्चल रहने से आत्मा में से सर्व आस्रवभाव छूट जाते हैं और आत्मा निर्विकल्प विज्ञानघन आनंदरूप होता है। जिसप्रकार समुद्र तरंगों से क्षुब्ध होकर भँवर खाता हो, तब उस भँवर ने नौका को पकड़ रखता है, परंतु जहाँ भँवर मिटकर समुद्र शांत हुआ वहाँ नौका को छोड़ देता है। उसीप्रकार यह भगवान चैतन्यसमुद्र पहले राग और विकल्पों की पकड़ से मिथ्यात्वरूपी भँवर में फँसा था, तब उसने आस्रवों को पकड़ रखा था, परंतु जहाँ राग से भिन्न अपने चिदानंद शुद्धस्वरूप का निर्णय करके स्वयं अपने में निश्चल हुआ, स्वयं शांतरस में मग्न हुआ, वहाँ भँवर शांत हो गये और विकल्पों को छोड़कर आत्मा निर्विकल्प विज्ञानघनस्वभाव से परिणमित हुआ।—यह आस्रवों से छूटने की रीति और यह मोक्ष का

मार्ग। इस विधि से ही आत्मा बंधन से छूटकर मुक्ति प्राप्त करता है। अनंत जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे... वे सब इसी रीति से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और होंगे; इसके अतिरिक्त मोक्ष की दूसरी कोई रीति नहीं है।

प्रारंभ में तो दूसरी कोई रीति होगी न ? नहीं भाई, पहले से यही रीति है। इस रीति से ही मोक्ष का उपाय प्रारंभ होता है। इस मार्ग में शंका करने जैसा नहीं है। अरे, जो महान दु:ख का कारण है, ऐसे विपरीत मार्ग में अज्ञानी जीव नि:शंक होकर वर्तते हैं, और अपने हित का जो सच्चा मार्ग वीतरागी संत बतलाते हैं, उसमें शंका करते हैं। वे जीव दु:ख से कैसे छूटेंगे ? भाई, अनंत जन्म-मरण दूर करने की तथा अनंत सुख प्राप्त करने की सच्ची रीति संत बतलाते हैं, उसे जानकर नि:शंक हो। आत्मा का जैसा परमार्थस्वरूप है, वैसा लक्ष में लेकर निश्चय करके उसका अनुभव करना, वही दु:ख से छूटने की रीति है।

अनादिकाल से जीव ने चार गति के कारणों का सेवन किया है, परंतु मोक्ष के कारण का कभी सेवन नहीं किया। आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञसमान है, उसे भूलकर रागयुक्त ही मानकर राग का सेवन किया है। जिसे हित करना हो और सुखी होना हो, उसे ऐसा निश्चय करना चाहिये कि मैं रागादि परभावों से भिन्न अकेला ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानभाव से अन्य भावों का स्वामित्व मुझमें नहीं है। स्वानुभूतिगम्य जो परमतत्त्व, वही मैं हूँ।—ऐसे स्वरूप में अंतर्मुख होने से तत्काल सर्व विकल्प छूट जाते हैं और आत्मा निजस्वरूप में एकाग्ररूप से विज्ञानघन होकर अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है।

भाई, चिदानंदस्वरूप के ध्यान बिना लाखों का एक-एक क्षण बीत रहा है। चिदानंदस्वरूप का ध्यान ही धर्मी का कार्य है; उसके अतिरिक्त किसी रागादि कार्य को धर्मी अपना नहीं मानते। चैतन्य समुद्र में दृष्टि डालने से अतीन्द्रिय आनंद का ज्वार आता है। आत्मा स्वयं अपने स्वभाव का ही अवलंबन करके आनंदरूप परिणमित होता है, उसमें विकल्प का अवलंबन नहीं है। राग से पृथक् होकर ज्ञान स्वयं अपने में स्थिर हुआ... ऐसे ज्ञान का अनुभव, सो सम्यग्दर्शन है; वह आस्रव से तथा बन्ध से छूटकर मोक्षसुख प्राप्त करने का उपाय है।

वीतरागमार्ग में वीतरागभाव का कर्तृत्व ही शोभा देता है

अहो, वीतरागमार्ग में वीतरागदेव ने वीतरागस्वरूप चैतन्यतत्त्व बतलाया है; उसके अवलंबन से वीतरागपर्याय प्रगट होती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। उसे समझकर जो उसकी रुचि और प्रतीति न करे, उसे वीतरागमार्ग कहाँ से हाथ आयेगा? अनंत काल से अपनी खोज स्वयं अपने में नहीं की, परंतु पर में खोजकर-करके व्यर्थ समय गँवाया। मानों दूसरा कोई मेरा कार्य कर देगा, इसप्रकार पर की ओर देखता रहा। भाई! अपना स्वकार्य करने की शक्ति तुझमें ही है। अन्य किसी कारण के बिना तू स्वयं सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक की अपनी दशाओं का कर्ता होकर परिणमित हो—ऐसी स्वाधीन प्रभुता तेरे आत्मा में है। अपनी प्रभुता द्वारा तू ही अपने कार्य का कर्ता है। ऐसी प्रभुता को जाने, वह अपनी पर्याय में दूसरे का कर्तृत्व नहीं मानता और स्वयं दूसरे का कर्ता होना भी नहीं मानता। निर्मल पर्याय के कर्तृत्वरूप से ही उसका परिणमन होता है।

अहो! चैतन्य का पंथ स्वतन्त्र निराला है। निमित्त हों या व्यवहार के विकल्प हों, परंतु वे कहीं ज्ञानपर्याय के कर्ता नहीं हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनंदादि निर्मल भावों का कर्तृत्व धर्मी के आत्मा में है; वस्तुस्वरूप से आत्मा स्वयं उनका कर्ता है। अहो, वीतरागी मोक्षमार्ग में रागरहित चारित्रपर्याय कोई अलोकिक है! कहाँ वह चारित्रपर्याय और कहाँ विकल्प! देह की नग्नदशा या विकल्प—वे कहीं वीतरागचारित्रदशा के कर्ता नहीं हैं; तथापि वैसी चारित्रदशा के समय बाह्य में यदि निमित्त हों तो वैसे ही होते हैं, परंतु उन निमित्तों का कर्तृत्व धर्मी के आत्मा में नहीं है। धर्मी के आत्मा में तो निर्मलभाव का ही कर्तृत्व है। ज्ञान के परिणमन में जितने भावों का समावेश होता है, उनका ही कर्तृत्व धर्मी को है; ज्ञान से बाहर के किन्हीं भी भावों का कर्तृत्व धर्मी को नहीं है। भाई! यदि तू परभावों के कर्तृत्व में अटकेगा तो उनसे रहित ऐसे निर्मलभाव को कब करेगा? अरे! तू चैतन्य, अपने चैतन्य कार्य को चूककर तू पर का और विकार का कर्ता होने कहाँ जाता है? अन्तर्मुख होकर अपने निर्मलज्ञानभाव का कर्ता हो... निर्मलभाव के स्वाधीन कर्तृत्व रूप से तेरा आत्मा शोभायमान होगा। तेरे निर्मलभाव का कर्तृत्व अन्य किसी में नहीं है।

[—'आत्मवैभव' गुज० से]

मोक्ष और बन्ध के कारण की पहिचान

ज्ञान और राग के बीच का भेदज्ञान

[समयसार-कलश १६५ से १६७ पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से]

(सोनगढ़ : ज्येष्ठ कृष्णा एकम से चौथ)

ज्ञानी और अज्ञानी की परिणति की सच्ची पहिचान होने पर जीव को मोक्षमार्ग तथा बन्धमार्ग का सच्चा स्वरूप समझ में आता है। बंध का कारण क्या है और मोक्ष का कारण क्या है—उसकी पहिचान में जीव की भूल है, इसलिये बंध से छूटने तथा मोक्ष को साधने का सच्चा उपाय भी वह नहीं करता। ज्ञानी अपनी कैसी परिणति द्वारा मोक्ष को साध रहे हैं और अज्ञानी कैसी परिणति के कारण बँधता है—वह यहाँ समझाया है। उसे समझकर बंध के कारणरूप अशुद्धता को छोड़ना और मोक्ष के कारणरूप शुद्धपरिणति प्रगट करना, वह मोक्षार्थी का प्रयोजन है।

आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप शुद्धवस्तु है; उसमें उपयोग की एकता द्वारा जो अनुभवनशील हुआ है, जो रागादि से भिन्न शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप परिणमित हुआ है, ऐसे धर्मात्मा को बंधन नहीं होता। बंध का कारण बाह्यसामग्री नहीं है, परंतु उपयोग की अशुद्धता अर्थात् रागादि के साथ की एकता ही बंध का कारण है।

धर्मी जीव अपने उपयोग को राग के साथ एकमेक किये बिना शुद्ध आत्मा के आनंद का अनुभव करने में उपयोग को लगाता है। जड़ पदार्थ भिन्न हैं, उन्हें तो कोई जीव अनुभवता नहीं है; अज्ञानी राग के अनुभव में उपयोग को लगाता है, वह अधर्म एवं बंध का कारण है। ज्ञानी राग के भिन्न उपयोग का शुद्धरूप अनुभव करता है, वह धर्म है और वह मोक्ष का कारण है।

धर्मी का उपयोग राग से भिन्न है, इसलिये उसे विभावपरिणमन नहीं है, वह अपने शुद्धस्वरूप का अनुभवनशील हुआ है। राग और चेतना दोनों का स्वरूप भिन्न है; उनके भिन्न स्वरूप को जो नहीं जानता और एकमेक अनुभव करता है, वह अशुद्ध परिणमन के कारण नवीन कर्मों में बँधता है। और जहाँ लक्षणभेद द्वारा उपयोग को राग से बिल्कुल भिन्न जाना,

वहाँ रागरहित ऐसे शुद्धस्वभावरूप ही अपना अनुभव करता है, वह सम्यग्दर्शन है, वह शुद्धपरिणति है और शुद्धपरिणमन के कारण उसे बंधन नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि जीव रागादि को परज्ञेय जानता है; वह उपयोग को स्व जानता है और रागादि को पर जानता है। राग से भिन्न ज्ञानचेतना परिणमित हुई, उस ज्ञानचेतना में धर्मी को अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव है। उस अनुभव में शुभविकल्प का भी प्रवेश नहीं है। ऐसी शुद्धपरिणति ही मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण बाह्य में अन्यत्र कहीं नहीं है। उसीप्रकार बंध का कारण भी बाह्य में कोई दूसरा नहीं है, जीव की अशुद्धपरिणति ही बंध का कारण है।

भाई, तेरा सुख और तेरा आनंद तो तुझमें होगा या बाहर? जिसप्रकार मीठे पानी के समुद्र में रहनेवाली मछली प्यास से तड़पे और दूसरे से पानी की याचना करे—तो वह आश्चर्य है! अरे, तू स्वयं ही मीठे पानी में रहती है... वह पानी क्यों नहीं पी लेती? बाहर क्यों ढूँढ़ती है? उसीप्रकार अज्ञानी सुख और धर्म के साधनों को बाह्य में ढूँढ़ता है। अपने में ही आनंद का सागर लहरा रहा है, उसे भूलकर बाह्य में सुख के लिये मिथ्या-प्रयत्न करता है, परंतु मछली के दृष्टांत से संत उसे बोध देते हैं कि—भाई, आनंद का सागर तो तुझमें ही भरा है, उसमें डुबकी लगाकर एकाग्र हो तो तुझे आनंद का अनुभव होगा। बाह्य में तेरा आनंद नहीं है। तेरे अनंतधर्म तुझमें ही भरे हैं, बाह्य में नहीं हैं, इसलिये बाहर न ढूँढ़... अपने में ही देख।

जिसप्रकार बाह्य वस्तु जीव को धर्म का कारण नहीं है, उसीप्रकार बाह्यवस्तु जीव को बंध का कारण भी नहीं है। मन-वचन-काया, चेतन-अचेतन बाह्यपदार्थ, वे बंध के कारण नहीं हैं; यदि वे बंध के कारण हों तो रागरहित ऐसे जीव को भी बंधन हो; बंध का कारण तो उपयोग में राग की मिलावटरूप अशुद्ध परिणति ही है, अन्य कोई नहीं। धर्मी जीव ने अपने उपयोग में वीतरागी स्वभाव को ही अपनाया है, राग को भिन्न जाना है; इसलिये उपयोग में उसे हिंसा नहीं होती, अशुद्धता नहीं होती।—ऐसा जो शुद्ध उपयोग, वही मोक्ष का कारण है।

जहाँ राग नहीं है, वहाँ बंधन कैसा? और जहाँ राग है, वहाँ बंध का अन्य कारण कैसा? जिसका उपयोग रागरहित है, उसे बंधन नहीं है; जिसके उपयोग में राग की मिलावटरूप अशुद्धता है, उसी को बंधन है, इसके अतिरिक्त बंध-मोक्ष का दूसरा कोई कारण नहीं है। दूसरा कारण कहा हो तो वह कथनमात्र अर्थात् उपचारकारण है।

शरीर की क्रिया जीव को मोक्ष का कारण हो—यह तो जड़-चेतन की एकत्वबुद्धिरूप

स्थूल महान भूल है। अंतर में शुभविकल्परूप राग भी जीव के उपयोगस्वभाव से विरुद्ध है, उस विरुद्धभाव को मोक्ष का साधन मानना, वह भी भूल है। उपयोग राग से भिन्न होकर अपने शुद्धस्वरूप से परिणमित हो, वही मोक्ष का कारण है। सम्यग्दृष्टि को ऐसी परिणति हुई, उसमें अशुद्धता दूर हो गई है, तो अब उसे बंधन कैसे होगा? इसलिये धर्मी को निश्चितरूप से बंधन नहीं होता। अहो, सम्यग्दृष्टि की शुद्धता की यह महिमा है कि किसी भी कारण से उसे बंधन नहीं होता। उपयोगभूमि रागरहित शुद्ध हो गयी, फिर उसमें बंधन का अवकाश ही कहाँ है? ऐसे धर्मी की पहिचान जगत को अति दुर्लभ है।

शुद्धस्वरूप क्या है—उसका अनुभव न करे, राग में एकत्वबुद्धि न छोड़े और अशुद्धभावों में ही वर्ते, उसे तो अवश्य बंधन होता है। 'हमें बंधन नहीं होता'—ऐसा कहकर स्वच्छंदतापूर्वक विषय-कषायों में वर्ते, उसे तो मिथ्यात्व की तीव्रता है। भाई, ज्ञानभाव प्रगट हो, उसमें तो राग का अभाव होता है। ज्ञानभाव प्रगट हो और राग की रुचि का भाव भी रहे—यह तो विरुद्ध है।

अनंतगुणों की शुद्धता से परिपूर्ण आत्मा जिसकी दृष्टि में तथा अनुभव में आया, वह रागादि बंधभावों से प्रेम क्यों करेगा? ज्ञान प्रगट हुआ, उसमें राग का कर्तृत्व क्यों रहेगा? चैतन्य के प्रकाश में रागरूप अंधकार क्यों होगा? ज्ञानी के जो बाह्यक्रिया एवं रागादि दिखायी देते हैं, उनमें कहीं आत्मबुद्धि नहीं है, इसलिये उनमें कहीं कर्तृत्व नहीं है, ज्ञानभाव का ही कर्तृत्व है, और ज्ञानभाव तो बंध का कारण क्यों होगा? इसलिये ज्ञानी को बंधन नहीं है, ऐसा कहा है। परंतु ज्ञानभाव को न जाने और कषायभावों में ही वर्ते—बाह्यसामग्री में रुचिपूर्वक सुख मानकर वर्ते—उसे तो अपने अज्ञानभाव से अवश्य बंधन होता है।

गणधरदेव ने कहीं ऐसा नहीं कहा कि जीव चाहे जिसप्रकार स्वच्छंदभाव से प्रवर्ते, तथापि उसे बंधन नहीं होता। प्रमाद से भरी हुई निरंकुश प्रवृत्ति तो बंध का ही कारण है। ज्ञानी तो समस्त परभावों से भिन्न होकर ज्ञानभावरूप हुआ है, उस ज्ञानभाव के कारण ही उसे अबंधपना है। वस्तु का स्वरूप तो ऐसा है कि शुद्धस्वरूप के अनुभव के कारण ज्ञानी को बंधन नहीं होता और रागादि अशुद्धता तो बंध का ही कारण है।

शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप ज्ञप्तिक्रिया और राग के कर्तृत्वरूप करोतिक्रिया—यह दोनों क्रियाएँ परस्पर विरुद्ध हैं, एकसाथ नहीं हो सकती। ज्ञानी को ज्ञप्तिक्रिया ज्ञानरूप है, उसमें

करोतिक्रिया का अभाव है। अज्ञानी को राग के कर्तृत्वरूप करोतिक्रिया है, उसमें ज्ञानरूप ज्ञप्तिक्रिया का अभाव है। ज्ञप्तिक्रिया मोक्ष का कारण है, करोतिक्रिया बंध का कारण है। इसलिये ज्ञानी को बंधन नहीं है, और अज्ञानी को बंधन है।

भाई, तू बंध के कारण का तो रुचिपूर्वक सेवन कर रहा है और कहता है कि मुझे बंधन नहीं है—यह तो तेरा तीव्र अज्ञानरूप स्वच्छंदभाव है। अशुद्धभावरूप रहना और कहना कि मुझे बंधन नहीं है, उसे तो मूढ़ता के कारण अपने परिणाम की भी खबर नहीं है। अहा, ज्ञानरूप हो, उसकी तो आत्मदशा ही पलट जाती है... वह तो भगवान के मार्ग पर आ गया है... शुद्धस्वरूप की अनुभूति में शुभविकल्प का भी अभाव है, वहाँ अशुभ की तो बात ही कहाँ रही ? राग की रुचि है, बाह्य सामग्री का अंतर से प्रेम है, वहाँ तो अशुद्धभाव है, वह तो बंध का ही ठिकाना है। श्री गणधरदेव ने तो शुद्धस्वरूप के अनुभवशील को अबंध कहा है; उसका ज्ञान तो रागादि से भिन्न ही परिणमित होता है। राग से भिन्न परिणमित ज्ञान तो बंध का अकारण ही है, अर्थात् मोक्ष का ही कारण है।

ज्ञानी निर्मल द्रव्य-गुण-पर्याय को ही स्वज्ञेय मानते हैं, रागादि परभावों को स्वज्ञेय नहीं मानते, परंतु स्व से भिन्न परज्ञेयरूप से जानते हैं। ज्ञान का और राग का स्वभाव एक नहीं है परन्तु भिन्न है, उनमें कर्ताकर्मपने का संबंध नहीं है। अरे, ज्ञान और राग में भी जहाँ कर्ताकर्मपना नहीं है, वहाँ ज्ञान जड़ शरीरादि के कार्य करे, यह बात तो कहाँ रही ? जड़ से भी ज्ञान की भिन्नता जिसे भासित न हो, वह राग से भिन्न ज्ञान का अनुभव कहाँ से करेगा ? और राग से भिन्न हुए बिना कर्म-बंधन कैसे रुकेगा ?

धर्मी को जितना राग है, उतना बंधन है, परंतु उस राग और बंधन से भिन्न ज्ञानरूप ही वह अपने को अनुभवता है, और ऐसा अनुभवशील ज्ञानभाव बंध का कारण नहीं है, इसलिये ज्ञानी को अबंध कहा है। अज्ञानी को राग से भिन्न ज्ञान का कोई अनुभव नहीं है, वह तो राग में ही मिठासपूर्वक तन्मयरूप से वर्तता है, वह राग का कर्ता है और इसलिये उसे अवश्य बंधन होता है। जो राग का कर्ता है, वह शुद्धस्वरूप का ज्ञाता नहीं है; जो ज्ञाता है, वह राग का कर्ता नहीं है। ज्ञाता तो बंधन नहीं है, राग के कर्ता को बंधन है।—इसप्रकार ज्ञानभाव और राग का कर्ताभाव—यह दोनों भाव एक-दूसरे से विरुद्ध हैं। उनके द्वारा ज्ञानी-अज्ञानी की पहिचान होती है। मोक्षमार्ग और बंधमार्ग की पहिचान भी इसमें आ जाती है। ज्ञानभाव तो मोक्षमार्ग है

और राग के कर्तृत्वरूप अज्ञानभाव, वह बंधमार्ग है।

धर्मी को आत्मा के आनंद का अनुभव है। धर्मी उसी को कहा जाता है जो आनंद की प्राप्ति और दुःख को नष्ट करने के मार्ग पर चल रहा है... आत्मा के आनंद का रसास्वादन किया, तब वह जीव धर्मी हुआ। जो अकेले रागादि अशुद्धभाव के अनुभव में पड़ा है, वह जीव धर्मी नहीं है। धर्म तो अपूर्व वस्तु है; धर्म तो आनंदमय है; दुःख से छूटने का उपाय जो धर्म, वह दुःखरूप कैसे होगा? धर्म तो पूर्ण आनंद की प्राप्ति का साधन है और वह स्वयं आनंद के अनुभवरूप है—ऐसा अनुभव, वह जैनधर्म है, ऐसा अनुभव करे, वह जैन है।

जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूप का अनुभव करता है, वह कर्म की उदय-सामग्री की अभिलाषा नहीं करता; और जो मिथ्यादृष्टि जीव कर्म की विचित्र सामग्री को अपनेरूप जानकर अभिलाषा करता है, वह शुद्धस्वरूप जीव को नहीं जानता। 'नाटक-समयसार' में कहा है कि—

करे करम सोई करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जो कर्ता नहि जाने सोई, जाने सो करता नहिं होई॥२३॥

मिथ्यादृष्टि जीव को शुद्ध आत्मस्वरूप का ज्ञातृत्व नहीं होता, इसलिये वह रागादि के कर्तृत्व में अटका है। धर्मी जीव अपने को शुद्धस्वरूप से अनुभवता हुआ रागादि का ज्ञाता ही रहता है, कर्ता नहीं होता; इसलिये ज्ञानी को बंधन नहीं है; अज्ञानी ही अपने को अशुद्धरूप अनुभव करता हुआ बँधता है। राग के एक अंश का भी जो अपनेरूप से अनुभव करता है, वह रागादि रहित ऐसे शुद्धस्वरूप को बिल्कुल नहीं जानता, और जो अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप को राग से भिन्नरूप अनुभवता है, वह ज्ञाता राग के एक अंश को भी अपनेरूप नहीं करता। राग और ज्ञान का भेदज्ञान न करना, वही बंध का कारण है। राग और ज्ञान की भिन्नता के अनुभव द्वारा अशुद्धता रुकती है और कर्म का संवर होता है। इसप्रकार ज्ञान का अनुभव ही मोक्ष का कारण है। उपयोग के साथ राग की एकतारूप जो चिकने मिथ्यात्व-परिणाम हैं, वही बंध का कारण है।

विदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान तीर्थंकररूप में विराजमान हैं; लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव यहाँ से विदेहक्षेत्र गये थे और दिव्यध्वनि का सीधा श्रवण किया था; उन्होंने इन समयसारादि शास्त्रों की रचना की है; आत्म-अनुभव से निजवैभव से शुद्ध आत्मा

का स्वरूप उन्होंने इस समयसार में बतलाया है; उसकी टीका में अमृतचंद्राचार्यदेव ने इन कलशों की रचना की है; इनमें अध्यात्म के गंभीर भाव भरे हैं। अंतर में ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव हो, तभी मोक्षमार्ग है; अनुभव के बिना मोक्षमार्ग नहीं है।

शास्त्र-श्रवण आदि द्वारा अज्ञानी भले ही शुद्ध आत्मा का विचार करता हो, परंतु शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप ज्ञातृत्व उसे नहीं होता। शुद्धस्वरूप का ज्ञान हो तो राग में एकत्वबुद्धि न रहे। कोई राग में एकत्वबुद्धिपूर्वक वर्ते और शुद्धस्वरूप का ज्ञान हो—ऐसा नहीं हो सकता। अज्ञानी का ज्ञातृत्व सच्चा नहीं होता। शुद्धस्वरूप के अनुभवसहित ज्ञान ही सच्चा है और वही मोक्ष का कारण होता है।—ऐसा समझकर उसका उद्यम करना चाहिये।

राग का एक छोटा अंश भी मेरा है अथवा वह मुझे मोक्ष की साधना में सहायक है-ऐसी जिसकी बुद्धि है, उसे राग की कर्तृत्वबुद्धि है, उसे गणधरदेव ने मिथ्यात्व कहा है। राग का अंश भले ही वह उच्च से उच्च शुभ हो, तथापि ज्ञानभाव से विरुद्ध है, मोक्षमार्ग से उसकी जाति भिन्न है, वह बंधभाव है। उस शुभराग की जिसे प्रीति है, राग को जो ज्ञानस्वभावी आत्मा का कार्य मानता है, और राग द्वारा मैं परजीव को बचा सकता हूँ—ऐसा जो मानता है, उसने पर से तथा राग से भिन्न वीतराग-पिण्ड आत्मा को नहीं जाना है। जहाँ आत्मा को शुद्धस्वरूप से नहीं जाना, वहाँ ज्ञान या चारित्र कुछ भी सच्चा नहीं होता। भाई! आत्मा तो ज्ञानतत्त्व है, आत्मा तो आनंदतत्त्व है, राग या आकुलता वह कहीं आत्मा का सच्चा तत्त्व नहीं है, वह तो बंधतत्त्व है। आत्मा तो अबंध है, मुक्तस्वरूप है। ऐसे आत्मा को रागयुक्त अनुभव किया; इसलिये जीव संसार में भटका। शुभराग का जिसे प्रेम हैं, उसे बंधभाव का प्रेम है, संसार का प्रेम है; उसे मोक्षमार्ग का प्रेम नहीं है। शुभराग भी करना है और मोक्ष भी करना है... तो इसप्रकार दोनों साथ नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों की जाति भिन्न है।

अज्ञानी जीव अज्ञान से भले ही ऐसा माने कि मैं पर को जिला सकता हूँ या मार सकता हूँ, अथवा सुख-दुःख दे सकता हूँ; परंतु उसकी मान्यता की मर्यादा कितनी ?—कि अपने में वैसा अज्ञान करे, उतनी ही उसकी मर्यादा है, पर में तो वह कुछ कर नहीं सकता। जिलाने की शुभ इच्छा होने पर भी सामनेवाला जीव मर भी जाता है, सुखी करने की शुभ इच्छा होने पर भी सामनेवाला जीव दुःखी होता है; उसीप्रकार सामनेवाले जीव को मारने की या दुःख देने की पापेच्छा होने पर भी वह जीव मरता या दुःखी नहीं होता। इसप्रकार पर में आत्मा का

अकर्तापना होने पर भी जो अज्ञान से कर्तापना मानता है, उस जीव को ज्ञानक्रिया कभी नहीं होती अर्थात् धर्म नहीं होता। उसीप्रकार अंतर में जो शुभराग, वह मोक्षसाधन न होने पर भी उसे जो मोक्ष का साधन मानता है, वह भी राग में एकत्वबुद्धिवाला अज्ञानी है, राग से पृथक् होकर वह मोक्षमार्ग में नहीं आता, इसलिये उसे भी धर्म नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को भी शुभाशुभराग होता है, परंतु वे अपने ज्ञानभाव से राग को भिन्न जानते हैं; तथा उस राग द्वारा मैं पर के कार्य कर दूँ—ऐसा वे नहीं मानते। इसप्रकार राग को रागरूप ही जानते हैं और अपने शुद्धज्ञानस्वरूप का उस राग से भिन्नरूप ही अनुभव करते हैं, इसलिये राग के समय उन्हें भेदज्ञान वर्तता है। ऐसा भेदज्ञान, वह मोक्ष का कारण है। ऐसी ज्ञानपरिणति द्वारा ज्ञानी को पहिचानना, वह सच्ची पहिचान है।

नया प्रकाशन

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला (भाग-२)

(पाँचवीं आवृत्ति)

[सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित]

पृष्ठ संख्या १४०, मूल्य - १.०

जिसमें शास्त्राधार सहित उत्तम प्रकार से जैन सिद्धान्त एवं वस्तुस्वरूप का तात्त्विक निरूपण प्रश्नोत्तमर के रूप में किया गया है। द्रव्य-गुण-पर्याय, छह कारक, उपादान-निमित्त, कर्ता-कर्म, नव तत्त्व, निमित्त-नैमित्तिक आदि को सम्यक् अनेकांत शैली से समझाया गया है। सबके लिये अत्यंत उपयोगी है।

पता—
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

अनेकांत द्वारा अरिहंतदेव ने
ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव कराया है

[समयसार-परिशिष्ट में अनेकांत के १४ बोलों पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार]

(सोनगढ़ : वैशाख शुक्ला १५ से ज्येष्ठ कृष्णा ३)

अनेकांत-जो कि अरिहंतदेव के शासन का प्राण है, उस अनेकांत द्वारा अरिहंत भगवान ने ज्ञानस्वभावी आत्मा बतलाया है; ज्ञानस्वभावी आत्मा की प्राप्ति-अनुभूति वह अनेकांत का फल है, वही सर्वज्ञशासन का रहस्य है।—यह बात यहाँ स्वामीजी ने समझायी है।

अनेकांत द्वारा ज्ञानमात्र आत्मवस्तु प्रसिद्ध होती है; सर्वज्ञ भगवान ने अनेकांत द्वारा ज्ञानमात्र आत्मा बतलाया है—उसका यह वर्णन है।

यह विश्व स्वभाव से ही बहुत भावों से भरा हुआ है। उसमें सर्वभाव अपने-अपने स्वभाव से अद्वैत हैं, तथापि द्वैत का अर्थात् अन्य वस्तु का निषेध करना, वह अशक्य है। जिसप्रकार जीव जगत में स्वतंत्र है। उसीप्रकार अजीव भी स्वतंत्र है। उसमें जीव अपने जीवस्वरूप से है और अजीवस्वरूप से नहीं है—इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ की स्वरूप में प्रवृत्ति है और पररूप से व्यावृत्ति है।—इसप्रकार प्रत्येक वस्तु को अस्ति-नास्तिरूप अनेकांतपना है, वह सर्वज्ञदेव ने प्रकाशित किया है।

जहाँ जीव और अजीव की अत्यंत भिन्नता है, दोनों की एकता का निषेध है, अर्थात् एक की दूसरे में प्रवृत्ति नहीं है, वहाँ कोई एक-दूसरे का कार्य करे, ऐसा नहीं होता। तथापि जीव अजीव में कुछ करे या अजीव से जीव में ज्ञानादि हों—ऐसा माने, उसे स्व-पर की एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व है। उसीप्रकार ज्ञान का और राग का भी एक-दूसरे में नास्तिपना है, इसलिये राग करते-करते ज्ञानभाव प्रगटे या राग, वह मोक्षमार्ग का साधन हो—ऐसा मानना भी स्वभाव और परभाव की एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व है।

वस्तु का स्वभाव भिन्न-भिन्न होने पर भी अज्ञानी अपने भिन्न ज्ञान का अनुभव नहीं करता; संयोग के साथ एकताबुद्धि से देखनेवाले जीव अपने स्वभाव की स्वतंत्रता को नहीं देख सकते। चश्मा जड़ है, ज्ञान जीव का भाव है; वहाँ चश्मे के संयोग को देखनेवाला तथा संयोग से भिन्न अपने ज्ञान को जो नहीं देखता, वह जड़-चेतन की एकत्वबुद्धि से ऐसा मानता है कि चश्मे से ज्ञान हुआ! भाई, चश्मे के संयोग के समय भी ज्ञान का परिणमन चश्मे के कारण नहीं परंतु अपने स्वभाव से ही है।—ऐसी स्वतंत्रता को सर्वज्ञ भगवान ने अनेकांत द्वारा प्रसिद्ध किया है।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; वह ज्ञान अपने स्वभाव से ही परिणमित होता हुआ जगत के सर्व ज्ञेयों को जानता है। इसप्रकार ज्ञान को पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेयपना है; परंतु दोनों का परिणमन भिन्न है। ज्ञान, ज्ञानरूप रहता है और ज्ञेय, ज्ञेयरूप से रहते हैं। ज्ञान कहीं ज्ञेयों को जानते हुए उनके साथ एकमेक नहीं हो जाता; परंतु अज्ञानी ऐसा मानता है कि मानों मैं ज्ञेयरूप हो गया हूँ; उसे अनेकांत की खबर नहीं है। परज्ञेय के कारण ज्ञान होता है, ऐसा जो मानता है, उसे भी अनेकांत की खबर नहीं है, उसने ज्ञान को परज्ञेय के साथ एकमेक माना है, वह अज्ञानी है। स्व-पर की एकताबुद्धिरूप एकांत द्वारा अज्ञानी जब नाश को प्राप्त होता है (अर्थात् अपने भिन्न ज्ञान को भूल जाता है) तब अनेकांत उसे ज्ञेयों से भिन्नता बतलाकर ज्ञान का अनुभव कराता है। ऐसा अनुभव करना, वह अनेकांत का फल है।

परज्ञेयों को जानते हुए अज्ञानी ऐसा मानता है कि उनके कारण ही ज्ञान होता है; परंतु ज्ञेय से भिन्नरूप ज्ञान का स्वाधीन अस्तित्व है—ऐसे अपने स्वाधीन अस्तित्व को जाने बिना धर्म नहीं होता। अनेकांत के १४ बोलों द्वारा यहाँ ज्ञान का स्वाधीन अस्तित्व समझाया है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा द्रव्यरूप से एक है, परंतु पर्याय में अनेक ज्ञेयों को जाननेरूप अनेकाकारपना है। अनेक ज्ञेयों को जानना, वह तो ज्ञान का सामर्थ्य है, वह कहीं दोष नहीं है। अनेक ज्ञेयों को जानने से ज्ञान भी खण्ड-खण्डरूप हो गया, ऐसा अज्ञानी को भ्रम होता है, वहाँ द्रव्यस्वभाव से ज्ञान की एकरूपता बतलाकर अनेकान्त उस भ्रम को मिटाता है। उसीप्रकार सर्वथा एकपना मानकर पर्याय के सामर्थ्य को न जाने तो उसे पर्याय-अपेक्षा से अनेकपना बतलाकर अनेकांत उसका भ्रम मिटाता है।

मेरी पर्याय में अनेक ज्ञेय ज्ञात होते हैं, इसलिये अनेकता है, उस अनेकता को मिटाने के

लिये परज्ञेयों के ज्ञान को निकाल दूँ—इसप्रकार अज्ञानी अपनी ज्ञानपर्याय को ही छोड़ देना चाहता है। परंतु भाई, परवस्तु ज्ञात हो, वह तो तेरे ज्ञान का सामर्थ्य है। एकपना तथा अनेकपना दोनों तेरे ज्ञान में विद्यमान हैं, उन्हें निकाल देने से ज्ञान ही नहीं रहेगा। अपने स्वभाव के आश्रय से ज्ञान ही अनेक निर्मल-पर्यायोंरूप से परिणमित होता है।

ज्ञान का स्वभाव जानने का है; उसमें चेतन भी ज्ञात होता है और जड़ भी; सिद्ध भी ज्ञात होते हैं और संसारी भी; शुद्धता भी ज्ञात होती है और राग भी; परंतु ज्ञान तो वहाँ ज्ञानरूप ही रहता है, ज्ञान कहीं जड़रूप या रागरूप नहीं होता। तथा विविध प्रकार का ज्ञान होता है, इसलिये ज्ञानपर्याय में भी वैसी विविधता होती है, तथापि द्रव्यस्वभाव से एकता कभी छूट नहीं जाती। विशेष ज्ञान के समय भी सामान्य ज्ञानस्वभाव धर्मी की प्रतीति में वर्तता है, इसलिये पर्यायभेद मैं सर्वथा भेदरूप हो गया, ऐसा भ्रम उसे नहीं होता।

यह ज्ञाता द्रव्य अपने स्वभाव से ही सर्वज्ञेयों को जानता है; वहाँ अज्ञानी परद्रव्य के कारण ही ज्ञान का अस्तित्व मानता है। यह परद्रव्य है तो उसका ज्ञान होता है—इसप्रकार अज्ञानी दोनों को एकरूप मानता है; परंतु ज्ञान का अस्तित्व ज्ञान से है और पर का अस्तित्व ज्ञान में नहीं है—इसप्रकार स्वद्रव्य-परद्रव्य की भिन्नता को सर्वज्ञदेव ने अनेकांत द्वारा प्रगट किया है।

आत्मा का ज्ञान आत्मप्रमाण स्वक्षेत्र में ही है, परक्षेत्र में वह नहीं जाता और परक्षेत्र ज्ञान में नहीं आता। परक्षेत्र में स्थित पदार्थों को जानने पर भी ज्ञान कहीं परक्षेत्र में नहीं जाता; स्वक्षेत्र में रहकर सबको जान लेने का ज्ञान का सामर्थ्य है। बाह्य में दूर के परक्षेत्र को जानने से मैं परक्षेत्र में चला जाऊँगा, इसलिये पर को नहीं जानना अच्छा है—इसप्रकार अज्ञानी भ्रम से मानकर स्वक्षेत्र में स्थित ज्ञानाकारों के सामर्थ्य को भूल जाता है। परक्षेत्र के नास्तिरूप रहकर स्वक्षेत्र में बैठे-बैठे ही सर्व लोकालोक को जान ले—ऐसी ज्ञान की शक्ति है; परक्षेत्र में स्थित वस्तु का स्वक्षेत्र में अभाव है। पर को जानते हुए उससे नास्तिरूप भिन्न अस्तित्व में रहे—ऐसा ज्ञान का सामर्थ्य है, उसे अनेकांत प्रकाशित करता है। असंख्यप्रदेशी स्वक्षेत्र में रहकर ही परक्षेत्रगत ज्ञेयों के ज्ञानरूप परिणमित हो, ऐसी ज्ञान की स्वाधीन शक्ति है। सम्मेदशिखर तीर्थ आदि परक्षेत्र के कारण यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है; सम्मेदशिखर में तीर्थंकरों-सिद्धों का स्मरण होता है, वह अपने कारण अपने स्वक्षेत्र के ही अस्तित्व में होता है। समवसरणादि सुक्षेत्र के कारण ज्ञान होता है या नरकादि कुक्षेत्र के कारण ज्ञान नष्ट हो जाता है—ऐसा जो

मानता है, वह परक्षेत्र से ज्ञान का अस्तित्व मानता है; परक्षेत्र से भिन्न ज्ञान की उसे खबर नहीं है। अनेकांत द्वारा सर्वज्ञदेव कहते हैं कि भाई! ज्ञान का अस्तित्व तेरे स्वक्षेत्र से है, उसमें परक्षेत्र से नास्तित्व है, इसलिये स्वाधीन स्वक्षेत्र में ज्ञान का अस्तित्व जानकर स्वसन्मुख परिणमन करना—ऐसा तात्पर्य है।

अत्यंत दूर के पदार्थ को जानने के लिये ज्ञान को दूर जाना पड़े, ऐसा नहीं है। यहाँ अपने स्वक्षेत्र में ही रहकर दूर के पदार्थों को भी जान लेना ज्ञान का स्वभाव है। स्वक्षेत्र में रहने के लिये परक्षेत्र का जानपना छोड़ नहीं देना पड़ता, क्योंकि परक्षेत्र का जानपना तो अपनी पर्याय में—अपने स्वक्षेत्र में ही है।

तथा ज्ञान का अस्तित्व अपने स्वकाल से है और परकाल से उसका नास्तित्व है। पूर्वकाल में जाने हुए ज्ञेय का नाश होने से कहीं ज्ञान का नाश नहीं हो जाता, ज्ञान तो अपने स्वकाल में वर्त रहा है। समवसरण में बैठा-बैठा दिव्यध्वनि सुनता हो, तब दिव्यध्वनि के काल के कारण यहाँ ज्ञान का अस्तित्व है, ऐसा नहीं है, परंतु ज्ञान के स्वकाल से ही ज्ञान का अस्तित्व है। चश्मे के अवलंबन से ज्ञान हुआ, वहाँ कहीं चश्मे के कारण ज्ञान का स्वकाल नहीं है, चश्मे में तो ज्ञान की नास्ति है। स्वकाल में ज्ञान की अस्ति है, स्वकाल से ही वह ज्ञान हुआ है, चश्मे से नहीं। चश्मे के कारण ज्ञान हुआ, ऐसा मानना वह तो स्व-पर की एकताबुद्धिरूप एकांत है; स्व-पर की भिन्नतारूप अनेकांत की उसे खबर नहीं है।

अहो, अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से ज्ञान की स्वाधीनता है, उसे लोग नहीं जानते। सर्वज्ञभगवान ने अनेकांत द्वारा स्वाधीन ज्ञानस्वभाव प्रकाशित किया है। जीव में केवलज्ञानरूप परिणमन हो और शरीर में उस काल वज्रसंहननरूप परिणमन हो, तथापि एक-दूसरे के कारण उनका अस्तित्व नहीं है, एक की दूसरे में नास्ति है। उसीप्रकार जीव में मुनिदशा हो और शरीर में उस काल दिगंबरदशा हो, तथापि दोनों स्वतंत्र हैं, किसी के कारण कोई नहीं है; शरीर की दिगंबरदशा जड़ है, जीव की मुनिदशा में उसकी नास्ति है और उस शरीर में मुनिदशा की नास्ति है। स्वकाल से प्रत्येक पदार्थ सत् है और पर काल से वह असत् है।—ऐसी भिन्नता में स्वाधीनता और स्वाधीनता में ही स्वाश्रयरूप वीतरागभाव अर्थात् धर्म है। वह अनेकांत का फल है। जहाँ जड़-चेतन की भिन्नता और स्वाधीनता की प्रतीति नहीं है और स्व-पर की एकतारूप एकांतबुद्धि है, वहाँ स्वाश्रयरूप वीतरागभाव नहीं होता, वहाँ तो अज्ञान और राग-द्वेष ही होता है, वह अधर्म है।

अनेकांत का फल स्ववस्तु की प्राप्ति है... अर्थात् निजपद की प्राप्ति, वह अनेकांत का फल है।

परज्ञेय के आश्रय से मेरा ज्ञान है, ऐसा माननेवाला, ज्ञेयों के बदलने से ज्ञान का भी नाश मानता है। भाई, ज्ञेयों के अवलंबन से तेरे ज्ञान का अस्तित्व नहीं है; ज्ञेय बदल जाने पर भी ज्ञान अपने ज्ञानस्वभाव के आश्रय से स्वकालरूप परिणमन करता रहता है। परज्ञेय का अवलंबन लेने के काल में ही ज्ञान का अस्तित्व है—ऐसा नहीं है। परज्ञेय से असत्रूप अपने स्वभाव का ही अवलंबन लेकर ज्ञान अपने स्वकाल में (स्वपर्याय में) अस्तिरूप से वर्तता है।

अब, भाव में अनेकांत ऐसा प्रकाशित करता हे कि ज्ञायकभावयप से ज्ञान का अस्तित्व है और परभावोंरूप से ज्ञान का नास्तित्व है। परभाव को जानने से ज्ञान कहीं परभावरूप नहीं हो जाता, वह तो स्व-भावरूप ही रहता है। राग को जानते हुए अज्ञानी ऐसा मानता है कि ज्ञान ही रागरूप हो गया, मलिनभाव को जानने से ज्ञान भी मलिन हो गया—इसप्रकार अज्ञानी को स्व-पर की एकता का भ्रम है, वह अनेकांत द्वारा दूर होता है। परभाव ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात हों, वहाँ ज्ञायकभाव कहीं उस परभावरूप नहीं हो गया है। अग्नि को जानने से ज्ञान जल नहीं जाता या बर्फ को जानने से गल नहीं जाता; ज्ञान तो अरूपीरूप से अपने स्वभाव में रहता है; उसीप्रकार राग-द्वेषादि परभाव ज्ञान में ज्ञात हों, वहाँ ज्ञान स्वयं उनमें तन्मय नहीं हो जाता, भिन्नरूप से अपने भाव में रहता है। परंतु ऐसी भिन्नता की जिसे प्रतीति नहीं है, वह ज्ञान का और राग का एकमेकरूप अनुभव करता है, वही एकांत है, अज्ञान है। भगवान उसे अनेकांत द्वारा समझाते हैं कि भाई! तू तो ज्ञान है, अन्य भाव तेरे ज्ञेय हैं, उनरूप तू नहीं है। ऐसी भिन्नता को जानकर ज्ञानरूप से ही आत्मा को श्रद्धा में-अनुभव में लेना, वह धर्म है।

जीव जब अकेली पर्याय को ही देखता है और नित्यतारूप सामान्यस्वभाव को नहीं देखता अर्थात् एकांत पर्यायमूढ़ हो जाता है, तब अनेकांत द्वारा उसे वस्तुस्वरूप समझाते हैं कि भाई! पर्यायअपेक्षा से अनित्यता होने पर भी तुझमें ज्ञान-सामान्यरूप से नित्यपना है, क्षणिक पर्याय जितना ही सम्पूर्ण तू नहीं है। तथा कोई जीव अकेली नित्यता को ही मानता है और ज्ञानविशेषरूप पर्याय को नहीं मानता, पर्याय को मानूँगा तो मैं खण्डित हो जाऊँगा—ऐसा अज्ञान से मानता है; उसे भी अनेकांत द्वारा समझाते हैं कि भाई! द्रव्यअपेक्षा नित्यता होने पर भी तुझमें ज्ञान-विशेष अपेक्षा से अनित्यता भी है। नित्यता और अनित्यता दोनों तेरा स्वरूप

है—ऐसा अनेकांत द्वारा वस्तुस्वरूप समझाया है। अनेकांत के एक पक्ष को निकाल दे तो वस्तुस्वरूप सिद्ध नहीं होगा।

ज्ञान की विशेष पर्यायें होना, वह भी अपना स्वरूप है, वे ज्ञानविशेष कहीं पर के कारण नहीं होते। पर के कारण ज्ञान माने तो उसने आत्मा के अनित्य स्वभाव को नहीं जाना है, अनेकांत को नहीं जाना है। वस्तु में सामान्य और विशेष दोनों अपने स्वभाव से ही हैं, किसी अन्य के कारण नहीं हैं। ज्ञानमात्र आत्मा में तत-अतत्पना, एक-अनेकपना, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सत्-असत्पना और नित्य-अनित्यपना, ऐसा अनेकांत स्वभाव से ही प्रकाशमान है। ऐसे ज्ञानमात्र आत्मा को पर से और राग से भिन्न करके सर्वज्ञदेव ने अनेकांत द्वारा बतलाया है। ऐसे आत्मा का अनुभव करना, वह सर्वज्ञ-अरहंतदेव का मार्ग है।

❀ ज्ञानस्वरूपता वह आत्मा का मुख्य लक्षण है, और उसके अभाववाला मुख्य लक्षण जड़ का है। वे दोनों के अनादि सहज-स्वभाव हैं।

❀ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य से अभेद ऐसे आत्मा का एक पल भी विचार करो।

—श्रीमद् राजचंद्र

केवलज्ञान-लक्ष्मी की पूजा

(स्वभाव की स्वीकृति में विकल्प की सहायता नहीं होती)

जगत में सर्वोत्कृष्ट ऐसी केवलज्ञान-लक्ष्मी के धारक भगवान वर्धमान तीर्थंकर पावापुरी में विराजमान थे... उनको मोक्ष जाने में दो दिन शेष थे, वहाँ दिव्यध्वनि रुक गई। लोगों ने जान लिया कि अब भगवान के निर्वाण का समय निकट है। इसलिये भारत के उस तेजस्वी सूर्य के प्रति परम भक्ति सहित उनकी केवलज्ञान-लक्ष्मी की लाखों भक्तों ने पूजा की।—वह दिन अर्थात् कार्तिक कृष्णा १३, उसी दिन का यह प्रवचन है। इसमें केवलज्ञान की अपार महिमा बतलाकर स्वामीजी ने कहा कि ऐसे ज्ञान को पहिचानकर उसकी पूजा-बहुमान कर तो तेरी चैतन्यलक्ष्मी का अपार भंडार खुल जायेगा।

[कार्तिक कृष्णा १३ (धनतेरस) के दिन 'परमात्म-प्रकाश' पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

हे जीव! ज्ञान और आनंद से परिपूर्ण जो सर्वज्ञस्वभाव अपने में ही नित्य अवस्थित है, उसके साथ तू संबंध कर... अर्थात् उसमें उपयोग को लगा। तेरे इस परमात्मतत्त्व में भव में नहीं, भव का कारण नहीं। सर्वज्ञतारूपी धन अपने आत्मा में भरा हुआ है, केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी के भंडार अपने आत्मा में भरे हैं, उनको श्रद्धा में लेकर उनकी पूजा कर। देखो, इस धनतेरस को चैतन्य की लक्ष्मी प्रगट हुई थी। जिसने अंतर्दृष्टि से परमात्मतत्त्व को देखा, उसको अपने में ही ज्ञान-आनंदरूपी अपूर्व चैतन्यनिधान की प्राप्ति होती है। ऐसी दृष्टि करनेवाले के आत्मा में दीपावली प्रगट होती है, ज्ञानदीपक प्रगट हो, वही सच्ची दीपावली है।

भगवान महावीरप्रभु दो दिन के बाद मोक्ष जानेवाले हैं, उनकी वाणी आज ही से रुक गई; अनेक राजाओं ने दो दिन तक भगवान की केवलज्ञान-लक्ष्मी का पूजन किया। जिसने केवलज्ञानस्वभावी आत्मा को पहिचानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया, उसने धनतेरस की अपूर्व लक्ष्मी का पूजन किया, उसके आत्मा में सर्वज्ञतारूपी अनंत लक्ष्मी का लाभ होगा।

भाई, तुझे मोक्ष के लिये कार्य करना है या नहीं?—हाँ; तो क्या कार्य करने से मोक्ष

होता है ? कि जो मोक्षस्वभावी है, ऐसी अपनी आत्मवस्तु को अनुभव में लेकर श्रद्धा-ज्ञानरूपी कार्य करेगा तो तुझ मोक्षमार्ग की प्राप्ति होगी। बंधरहित-रागरहित आत्मा को अनुभव में लेगा, तभी मोक्ष होगा; बंधन के अनुभव से मोक्ष किसप्रकार हो ? नहीं हो सकता। इसलिये द्रव्य अपेक्षा त्रैकालिक मुक्त लक्षणवाला अर्थात् भूतार्थस्वभाववाला जो आत्मा है, उसमें एकाग्र होकर उसको पहिचान-यह मोक्षप्राप्ति का कार्य है।

परमात्मतत्त्व का ज्ञानसामर्थ्य अचिंत्य है। लोकालोक के समस्त ज्ञेयों को प्रत्येक समय में जान लेने पर भी उसके सामर्थ्य का अंत नहीं आता; ज्ञेयों का अंत आ जाता है परंतु ज्ञानशक्ति तो इनसे विशेष है। लोकालोक को जानने के सामर्थ्य से भी अनंतगुना सामर्थ्य केवलज्ञान का है। उसकी अचिंत्यशक्ति के अनंतवें भाग में ही लोकालोक जानने में आ जाता है, तो केवलज्ञान की पूर्ण शक्ति की तो बात ही क्या! अनंत लोक की विशालता अचिंत्य है, परंतु केवलज्ञान की शक्ति तो इससे भी अनंतगुनी है। उस असीम शक्ति का पार अंतर्दृष्टि हुए बिना नहीं आ सकता।

जिसप्रकार हरी बेल मंडप के ऊपर चढ़कर उसके अंत तक उसका विस्तार होता है; फिर भी उसकी विस्तारशक्ति का अंत आ गया हो, ऐसा नहीं। उसीप्रकार केवलज्ञानरूपी बेल लोकालोक के मंडप तक पहुँच गई, तथापि उसके जानने की शक्ति कहीं समाप्त नहीं हुई, उसमें अभी भी अपार शक्ति विद्यमान है। निमित्त के अभाव के कारण वह शक्ति रुक गई हो-ऐसा नहीं है; परंतु लोकालोक को जानने की शक्ति से भी केवलज्ञान की शक्ति अनंतगुनी है। उस शक्ति का सामर्थ्य बतलाना है। अहा, जिस ज्ञान-शक्ति का एक अंश लोकालोक को जान ले उसके पूर्ण सामर्थ्य की तो बात ही क्या!!

लोकालोक को जाना और अन्य ज्ञेयों को नहीं जाना, इसलिये इतना ही ज्ञान का सामर्थ्य है, विशेष सामर्थ्य नहीं—ऐसा अर्थ नहीं लगाना। सामर्थ्य तो अधिक है, परंतु लोकालोक के अतिरिक्त अन्य ज्ञेय हैं ही नहीं तो फिर किसको जाने ? इसप्रकार वर्णन करके ज्ञानस्वभाव की अपार शक्ति की महिमा बतलाई है। कहीं निमित्ताधीनपना नहीं बतलाया गया।

जैसे सिद्ध का ऊर्ध्वगमनस्वभाव बताते हुए कहा गया कि लोकाग्र तक गये, फिर धर्मास्ति न होने से आगे अलोक में नहीं गये; इससे कहीं निमित्ताधीनपना है, ऐसा नहीं बतलाना है, परंतु सिद्ध का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है, यह बतलाना है। अरे, संत तो वस्तु के

स्वभाव को बतलाते हैं, उसको लक्ष में लेने के बदले निमित्ताधीन दृष्टि से उल्टे अर्थ करे, वह पराधीनदृष्टि से किसप्रकार छूटेगा ?

उसीप्रकार काल के बिना परिणमन नहीं होता, ऐसा निमित्त से कहा जाता है। परंतु वहाँ तो कालद्रव्य निश्चयद्रव्य है, उसको जो नहीं मानते, उन्हें कालद्रव्य का अस्तित्व बतलाया है। वस्तु का परिणमन तो वस्तु के स्वभाव से ही होता है।

धर्मास्ति बिना गति नहीं, अधर्मास्ति बिना स्थिति नहीं,
काल बिना परिणमन नहीं, पुद्गल बिना लोकयात्रा नहीं,
जीव बिना संसार नहीं, ज्ञेय बिना ज्ञान नहीं।

—यहाँ अज्ञानी पराधीन दृष्टि से वस्तुस्वरूप को पराधीन मानता है। परंतु भाई! गति करने की शक्ति किसकी ? स्थिति करने का स्वभाव किसका ? परिणमन करने का स्वभाव किसका ? संसार व मोक्षदशा का निर्माता कौन ? और जानने का स्वभाव किसका ? संयोग को मत देख, स्वभाव को देख। वस्तु में जो असीम सामर्थ्य है, उसको तू पहिचान।

जानने की शक्ति ज्ञान की अपनी है, ज्ञेयों में से कहीं ऐसी शक्ति नहीं आती, ज्ञेयों से ज्ञात होता हो तो जितने ज्ञेय, उतना ज्ञानसामर्थ्य होना चाहिये, परंतु ज्ञानसामर्थ्य तो सर्व ज्ञेयों से भी अधिक है-अनंत गुना है।—इसलिये ज्ञानसामर्थ्य ज्ञेय के अवलंबनरहित अपने स्वभाव से ही है। ज्ञेयों का अंत आया परंतु ज्ञानसामर्थ्य का अंत नहीं आया—इतनी एकसमय की पर्याय की शक्ति, तो फिर संपूर्ण ज्ञानगुण के सागर का कहना ही क्या ? और ऐसा अनंतगुणों का पिंड जो संपूर्ण आत्मा-उसके अचिंत्य-स्वभाव का तो कहना ही क्या ? जिसके एक अंश में भी अपार शक्ति—उसके संपूर्ण सामर्थ्य की तो बात ही क्या!! ऐसे ज्ञान का पूजन कर, उसका बहुमान कर... इससे तेरी चैतन्यलक्ष्मी के अपार भंडार खुल जायेंगे।

अहा, चैतन्य की इस अचिंत्यशक्ति के समक्ष विकल्प का क्या मूल्य ? विकल्प तो कहाँ तक पहुँच सकते हैं ? अपार शक्तिवाला चैतन्यस्वभाव तो ज्ञान की अनुभूति में ही आ सकता है।

देखो, चैतन्य के सम्मेदशिखर की यह यात्रा होती है! एक बार स्वभाव का उल्लास लाकर अपने चैतन्य के सम्मेदशिखर पर चढ़ जा... अंतरस्वभाव को लक्ष में लेकर उसका उल्लास लो। अहा, आत्मा की शक्ति की तो बात ही क्या!! सर्वज्ञपद की महिमा का क्या कहना!!

तेरा स्वभाव सत् है—उसकी यह बात है, यह कोई अगोचर वस्तु की कल्पित बात नहीं है, परंतु तेरे आत्मा में विद्यमान सत्स्वभाव की बात है, और वह ज्ञानगोचर हो जाये, ऐसा है। संतों ने जिसे साक्षात् अनुभवगोचर किया है, उस स्वभाव की यह बात है। जिस श्रद्धा का बल ऐसे स्वभाव को स्वीकार करे, उसमें विकल्प की सहायता नहीं होती। हे जीव! स्वभाव के आश्रय से ऐसी श्रद्धा के दीपक प्रगट कर तो अल्प काल में ही तेरे आत्मा में केवलज्ञान से जगमगता हुआ सुप्रभात प्रगट हो जायेगा।

❀ जिससे आत्मा को निजस्वरूप की प्राप्ति हो, ऐसा जो आर्य (उत्तम) मार्ग उसे आर्यधर्म कहते हैं; और यही योग्य है।

❀ जो धर्म संसारपरिक्षीण करने में सबसे उत्तम हो तथा निजस्वभाव में स्थिति कराने में बलवान हो, वही उत्तम तथा वही बलवान है। —श्रीमद् राजचंद्र

पर्यूषणपर्व—समाचार

[पर्यूषण पर्व में अनेक नगरों से विद्वानों को भेजने की माँग के पत्र श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ के नाम आये थे, परंतु कुछ ही स्थानों पर विद्वानों को भेजा जा सका। जहाँ भी विद्वान गये वहाँ अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। उन स्थानों से जो समाचार आये हैं, वे संक्षेप में दिये जा रहे हैं। पिछले अंक में समयाभाव के कारण पर्यूषण के समाचार नहीं दिये जा सके थे, जो इस अंक में दे रहे हैं।]

***

अजमेर (राज.)—तारीख ९-९-६८। श्री बाबूभाई फतेहपुरवाले आज रात्रि को फतेहपुर जाते हुए अजमेर स्टेशन से गुजर रहे हैं। यह समाचार पाकर स्थानीय समाज के अनेक अग्रणी व्यक्ति स्टेशन पर गये और बाबूभाई से अजमेर आकर आध्यात्मिक रसास्वादन

कराने का आग्रह किया। आपने एक दिन के लिये समय दिया। तारीख १०, को पूरे दिन का वातावरण अत्यंत आनंद-मंगलमय रहा। प्रात: ८.०० से ९.०० तक श्री बाबूभाई का अत्यंत प्रभावशाली प्रवचन हुआ-तात्त्विकचर्चा हुई। श्री १०८ मुनिश्री भी उपस्थित थे। रात्रि को भी प्रवचन हुआ जिसमें स्थानीय समाज ने बड़ी रुचि से भाग लिया; धार्मिक चेतना की बाढ़ आयी।

—शिखरचंद सोनी, रंगमहल, अजमेर

उदयपुर (राज.)—हमारी कई वर्षों की तीव्र भावना थी वह सफल हुई। श्री 'युगल'जी कोटा इस मंगल पर्व में पधारे, हमारे यहाँ एक महान हर्ष की लहर फैल गई। तारीख २५ को स्वागत-समारोह, तारीख २६ को नवनिर्मित श्री चंद्रप्रभु चैत्यालय में दर्शन-पूजन पश्चात् मंगल-प्रवचन हुआ। हमेशा श्री समयसारजी पर उत्तम सरल स्पष्टीकरण होता था, श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे, अपूर्व पुरुषार्थ की ही प्रेरणा प्राप्त होती थी। श्रोता चाहते थे कि पंडितजी बोलते ही रहें, आप चर्चा-समाधान के लिये सदा तत्पर रहते थे।

अग्रवाल मंदिरजी में सूत्रजी का अर्थ श्री पंडित मिलापचंदजी केकड़ीवालों द्वारा होता था। रात्रि को युगलजी दसलक्षण धर्म पर वीतरागविज्ञानता, स्वतंत्रता, निश्चय-व्यवहार आदि का विभाग करके न्याय-नीति भी समझाते थे। तारीख ६ को कुरावड से दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल अति प्रेम भरे आग्रह से लिवाने आया। पंडितजी के साथ उदयपुर के १०० जिज्ञासुगण कुरावड गये। वहाँ भव्य स्वागत श्री छगनलालजी ने किया। पश्चात् जुलूस के रूप में पंडितजी को नगर में ले गये, बड़ी संख्या में जैन-अजैन जनता साथ थी। भगनोतजी की दुकानों पर जुलूस सभा रूप में हो गया। शाम को यहाँ ही प्रवचन हुआ। तारीख ७ को रथोत्सव तथा प्रीतिभोज का आयोजन रहा। एक दिन केसरियाजी तीर्थ की वंदना की। तारीख ८ को उदयपुर आये, दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम में नगर के अग्रणी गणमान्य जैन-अजैन ५०० संख्या में एकत्र हुए। पंडितजी को सम्मानपत्र दिया गया।

आश्रम के अधि. श्री ब्रह्मचारी कुंजीलालजी उपस्थित थे। श्री युगलजी ने बड़ी नम्रता प्रगट कर कहा मैं तो सत्य का पुजारी हूँ, सत्यधर्म की महिमा आने से नमूना लेकर आपके पास आया हूँ, जो कुछ अच्छाई है, वह पूज्य सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की है, न्यूनता मेरी ही है। पश्चात् क्षमावाणी पर्व के दिन कहा—हम निजात्मा का महान अपराध करते आये हैं तो उसे

सम्यक्प्रकार स्वभाव की महिमा लाकर क्षमा कराना चाहिये तथा व्यवहार से अनंत ज्ञानियों की बात न मानकर अनादर किया, उसकी भी क्षमा-याचना करना चाहिये। लौकिक क्षमा तो व्यवहार है, धर्म नहीं है इत्यादि। जो कार्यक्रम इस साल प्राप्त हुआ, उसके लिये हम आप सभी का आभार मानते हैं। *—उग्रसेन बंडी, उपाध्यक्ष, मुमुक्षु मंडल, उदयपुर*

जयपुर (राज.)—पर्वराज एवं दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल का अधिवेशन - सोनगढ़ व बम्बई निवासी प्रवक्ता पंडित श्री हिम्मतलालजी ने इस अधिवेशन के उद्घाटन में कहा कि आत्मा की शुद्धि एवं कल्याण ही प्रत्येक व्यक्ति का सर्वोपरि धर्म एवं कर्तव्य होना चाहिये। सर्वज्ञ-वीतराग कथित तत्त्व के विपरीत अभिप्रायरहित एवं भावभासनसहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मुक्ति का मार्ग है, आदि अनेक विषयों पर विशद विवेचन किया गया था। श्री नेमीचंदजी पाटनी, डॉ. ताराचंदजी बक्सी, श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी आदि ने जैन मुमुक्षु मंडल की आवश्यकता एवं उद्देश्यों का परिचय देकर मध्यप्रदेश भोपाल मुमुक्षु मंडल के उत्तम कार्यक्रम का वर्णन किया और राजस्थान के इस मुख्य क्षेत्र में मंडल के कार्यक्रमों में सहयोग देने का सभी से अनुरोध किया गया। श्री पंडित हिम्मतलालजी के प्रवचनों से यहाँ धर्म की अत्यंत प्रभावना हुई—धार्मिक ग्रंथों की खूब बिक्री हुई, 'आत्मधर्म' के ६० नवीन ग्राहक बने, बड़े मंदिरजी में प्रतिदिन रात्रि को भी स्वाध्याय-सभा की स्थापना हुई, रविवार के दिन पंडित हुकमचंदजी सा. का भी शास्त्र-प्रवचन हुआ था।

टोडरमल स्मारक भवन में स्वाध्याय, पूजन, तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम में छात्रावास के सभी विद्यार्थी उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। अनेक भाईयों के साथ पंडित हिम्मलालजी यहाँ से ५० मील दूर बैराठनगर गये जो पांडे श्री राजमलजी की जन्मभूमि है। वहाँ शास्त्र भंडारों को देखा तथा मंदिरों के दर्शन किये, पश्चात् सीकर तथा लाडनू नगर के भव्य जिनालय में दर्शन किये। शास्त्र-प्रवचन भी हुए थे।

आपके द्वारा जयपुर के विभिन्न मंदिरों में मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में तीनों समय प्रभावशाली प्रवचन हुए, सभी कार्यक्रमों में इतनी भीड़ रहती थी कि दैनिक पूजा के लिये मंदिरजी के अतिरिक्त टोडरमल स्मारक भवन हॉल में भी भगवान की मूर्ति को विराजमान किया गया था। पूरा हॉल भर जाता था, क्षमापना पर्व महोत्सव में २००० लोगों के समक्ष उत्तम

क्षमा पर हृदयस्पर्शी प्रवचन हुआ था। विदाई-समारोह में जयपुर जैन समाज की ओर से पूज्य स्वामीजी का एवं संस्था का अति आभार और पंडित श्री हिम्मतलालजी के प्रति आभार प्रगट किया गया।

डॉ० ताराचंद जैन बक्सी
प्रचारमंत्री, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, जयपुर

देहली—यहाँ पर हमारे सौभाग्य से श्रावक क्षमाधारक श्री पंडित खेमचंदजी सेठ सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिरजी की शैली कमेटी द्वारा विशेष आग्रह पर पधारे, तथा पंडित नेमीचंदजी रखियालवाले श्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल समाज द्वारा वेदवाडा श्री दिगम्बर जैन मंदिरजी के लिये आमंत्रित किये गये थे। साथ ही पंडित गोविंदरामजी श्री दिगम्बर जैन समाज गांधीनगर द्वारा बुलाये गये थे। यहाँ पंडित खेमचंदजी साहब के पधारने की जैसे ही सूचना प्राप्त हुई, सारी समाज तथा श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के सदस्यों में प्रसन्नता की लहर फैल गई और आपका पालम हवाई अड्डे पर समाज के गणमान्य व्यक्तियों तथा मुमुक्षु मंडल के सदस्यों ने जाकर स्वागत किया। जैसे ही आप विमान से उतरे सारा हवाई अड्डा पूज्य श्री गुरुदेव के जयकार से गूँज उठा। इस महान पर्वराज दसलक्षणी पर्व पर आप विद्वानों के प्रवचनों से हजारों की संख्या में भव्य जीव आनंदित हो उठे तथा नित्य हजारों की संख्या में धर्मलाभ उठाया। अंत के दो दिनों में श्री ज्ञानचंदजी-मंत्री मुमुक्षु मंडल दिल्ली द्वारा लिखित आराधना नाम का रूपक श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिरजी में दो भागों में प्रस्तुत किया। जिसकी समाज द्वारा प्रशंसा की गयी। श्री पंडित खीमचंदभाई के प्रवचनों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा।

रविचंद्र जैन : उपमंत्री

कोटा (राज.)—श्री दिगम्बर जैन बड़ा चैत्यालय रामपुरा में पंडित श्री उग्रसेनजी (उदयपुर) द्वारा हमेशा प्रात: पूजन के उपरांत एक घंटा समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन। १० से ११ तक ब्रह्मचारी श्री दुलीचंदजी (अधि-उ० आश्रम इंदौर) का १० धर्मों पर प्रवचन, मध्याह्न में ब्रह्मचारीजी द्वारा दो घंटा चर्चा-समाधान में जिनागम कथित सभी विषयों पर स्पष्टीकरण होता था। अग्रणी प्रतिष्ठित लोग भी नि:संकोच भाग लेते थे। श्री जंबुकुमारजी बज के भाग लेने से चर्चा अधिक रोचक हो जाती थी। ४ से ५ भक्ति आदि, सायंकाल महिलाओं द्वारा शास्त्र प्रवचन, रात्रि को ७ से ८ पंडित उग्रसेनजी बंडी द्वारा जैन औषधालय में दस धर्मों पर प्रवचन के

समय भारी संख्या में जिज्ञासुगण उपस्थित होते थे, ९ से १० तक जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर एक कक्षा का आयोजन था उनमें सभी ने भाग लिया।

श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर में पंडित फतहचंदजी शास्त्री (जबलपुर) के प्रवचनादि थे। पाटनपोल दिगम्बर जैन चैत्यालय में पंडित घासीलालजी शाम को शास्त्र प्रवचन करते थे। यहाँ जैन संख्या अधिक होने से बड़ी संख्या में उपस्थिति रहती थी। क्षमावाणी पर्व के विशाल आयोजन के समय हर वर्ष की भाँति दिगम्बर जैन समाज नयापुरा द्वारा रात्रि ८ बजे से वोकेशनल हाईस्कूल के प्रांगण में एक सार्वजनिक सभा के रूप में मनाया गया। अध्यक्षता श्री हीरालाल जैन ने की। सभा में उदयपुर के पंडित श्री उग्रसेनजी बंडी, श्री मदनलाल शर्मा एडवोकेट द्वारा सारगर्भित भाषण हुए, पश्चात् विविध शैली से जैन भजन-भक्ति का कार्यक्रम अति सुंदर रहा। *—लालचंद जैन, कोटा*

सहारनपुर (म.प्र.)—पर्वराज के पुनीत अवसर पर श्री बाबूभाई फतेहपुरवाले पधारे। यहाँ जैन समाज ने प्रथम से ही एक समिति बना ली थी। पेम्पलेट द्वारा आसपास के गाँवों में भी खबर पहुँचा दी थी। श्री बाबूभाई का स्वागत करते हुए श्रीमान प्रद्युमनकुमार देवकुमार जैन ने बाबूभाई को माला पहनाई, और जयनादों के साथ अपने अतिथिगृह में ले गये। तारीख २७-८-६८ को बड़तला मंदिर में आपका प्रवचन हुआ। वीतरागविज्ञान, मोक्षमार्ग एवं सम्यग्दर्शन का स्वरूप, सर्वज्ञदेव कथित अनेकांत के स्वरूप पर अद्वितीय शैली से प्रवचन हुआ।

दूसरे दिन ८ से ९ तक मित्रभवन में शंका-समाधान हुआ। सप्रमाण उत्तर सुनकर जनता अति प्रसन्न हुई और उनकी एवं पूज्य स्वामीजी की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगी कि—ऐसा अनुपम वीतरागी तत्त्व जो कि बहुत दिनों से छिपा पड़ा था, प्रकाश में आया। तत्त्वजिज्ञासु श्रोतागण सभा में बराबर आते थे। आपने सम्यक् अनेकांत के विषय पर ४ दिन तक प्रकाश डाला, जिससे अनेक विवेक स्वाध्यायशीलों को वस्तु की स्वतंत्रता समझ में आ गई। प्रवचन में १००० श्रोतागण होते थे। हेय-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहारनय की संधि, उत्तमक्षमादि धर्म पर आपने अतीव मार्मिक, संतोषजनक व्याख्यान दिये। श्री बाबूभाई ने एकाशन, उपवास करते हुए भी उपेदश द्वारा प्रशंसनीय प्रयत्न द्वारा पूज्य कानजीस्वामी की महती साधना के यश-गौरव का जनता को ज्ञान कराया।

सम्यग्दृष्टि का महत्व स्वध्रुवत्व के आश्रय में ही निहित है, यही संजीवनी जड़ी अनादि से रोगी जीवों को गुरुदेव बाँट रहे हैं, उसी का सेम्पल लेकर मैं आया हूँ, जिसे रुचि हो ग्रहण करे। सोनगढ़ आकर विशेष परिचय करे। श्रीमान् खीमचंदभाई ने यहाँ पधारकर हमारे हर्ष को बढ़ाया। दो दिन मार्मिक प्रवचनों द्वारा यहाँ की समाज को मूढ़ता के गड्ढे से निकालकर वस्तुस्वरूप समझने के किनारे पर लगा दिया है।

विदाई-समारोह

तारीख ७-९-६८ को जैनबाग के मंदिर के विशाल भवन में श्री पंडित खीमचंदभाई तथा श्री पंडित बाबूभाई को स्वागत-समिति के मंत्री श्री प्रकाशचंद्रजी एडवोकेट द्वारा जैनसमाज के समक्ष सादर अभिनंदन-पत्र समर्पित करते समय जैन समाज के मंत्री श्री कैलाशचंद्रजी बैंकर्स ने कहा कि श्री बाबूभाई के प्रवचनों द्वारा जैनबाग मंदिर के लिये ९०००) रुपये एकत्र हो गये तथा श्री बाबूभाई ने भी ४००) रुपये प्रदान किये। पश्चात् मुमुक्षु मंडल के प्रमुख श्री अनंतरामजी ने गदगद होकर कहा कि मात्र बाहरी क्रियाकांड में जीवन को सफल माननेवाले हम लोगों को माननीय विद्वानद्वय ने अपने मार्मिक प्रवचनों द्वारा सन्मार्ग प्रदर्शन किया है। हम उनका तथा सोनगढ़ में विराजमान पूज्य श्री कानजीस्वामी का महान उपकार मानते हैं।

सहारनपुर मुमुक्षु मंडल के मेरुदण्ड समान श्री जिनेश्वरदासजी ने कहा कि इस वर्ष श्रावण मास के शिक्षणवर्ग में हम बहुत संख्या में सोनगढ़ गये थे। स्वामीजी ने खूब अमृत पिलाया है। जो सर्वज्ञ-वीतराग कथित धर्म है, वही बतलाया है। तत्पश्चात सम्मान-पत्र पढ़कर सुनाया। विद्वानद्वय को मानपत्र अर्पण किये। श्री खीमचंदभाई ने कहा मानादिक का राग भी किंचित् आदरणीय नहीं है, सम्मान-पत्र देने-लेने का भाव भी ज्ञानी का ज्ञेय है। सच्चा अभिनंदन तभी समझा जाता है कि जब सर्व ओर से अपना उपयोग हटाकर स्व-ध्रुवस्वभाव का आश्रय हो। सच्चे ध्रुवधाम के ध्यान की धुन लगाकर धर्मरत्न की प्राप्ति बतलानेवालों की जय जनता द्वारा गूंज उठी। पंडितजी ने एक बात यह कही कि पूजा, भक्ति, दान, जिनमंदिर निर्माण, जैन साहित्य का आगमानुकूल प्रकाशन आदि शुभ व्यवहजारकार्य भी सोनगढ़ में हो रहे हैं, जो अद्वितीय हैं। इसप्रकार शुभ व्यवहार भी आप लोग कहाँ करते हो ? हम सोनगढ़ के

माननेवाले सर्वज्ञ-वीतराग कथित निश्चय-व्यवहार दोनों करते दिखते हैं, भूमिकानुसार ऐसा भाव आता है, उन्हें जानना प्रयोजनवान है। तब आप लोग तो मात्र व्यवहार में ही अपना जीवन सफल मानते हो। तत्पश्चात् विद्वानों ने प्रस्थान किया। विदाई के समय अनेक भाई-बहिनों के आँसू बह रहे थे।

—देवचंद जैन, एम.ए.

भिण्ड (म.प्र.)—सकल दिगम्बर जैन पंचान की प्रार्थना होने पर ब्रह्मचारी हेमराजजी (भोपाल निवासी) पधारे, आशातीत विशेष धर्मप्रभावना हुई। यहाँ की समस्त दिगम्बर जैन समाज सोनगढ़ संस्था की तथा पूज्य स्वामीजी की अत्यंत आभारी है। यहाँ जैनों की बहुत बड़ी संख्या है। ब्रह्मचारीजी ने हमारी धार्मिक कमी को बड़े सुचारुरूप से पूर्ण किया, हमेशा ऐसे ही योग्य व्यक्ति को भेजने की कृपा करते रहें। यहाँ की समाज की प्रेरणा से जैन शिक्षण क्लास चलाने की स्वीकृति ब्रह्मचारीजी ने दे दी है, अब ५०० तक जैन शिक्षार्थी पढ़ रहे हैं। ब्रह्मचारीजी का उपदेश दिन में चार समय अर्थात् प्रातः ४ से ५ तक तत्त्वचर्चा, ८ से ९ समयसारजी शास्त्र, ३ से ५ सूत्रजी, रात्रि को श्रावकाचार तथा दसलक्षण धर्म पर प्रवचन अनेक आगम-प्रमाणों के साथ होता था। श्रोताओं की संख्या इन दिनों में ४ से ५ हजार तक प्रतिदिन होती थी। रात्रि को शंका-समाधान में तो काफी संख्या में लाभ लेते थे। स्थानीय पंडित तथा ब्रह्मचारीगण ने लाभ लेकर शंकाएँ दूर करके निश्चय-व्यवहार का मेल समझकर पक्का समाधान करके सोनगढ़ संबंधी जो भ्रम था, वह दूर कर लिया है। उसके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजी से भारी अनुरोध कर शिक्षण वर्ग चलाने के लिये एक मास ठहराया है।

चन्द्रसेन जैन सर्राफ
मंत्री, सकल दिगम्बर जैन समाज, भिण्ड

ग्वालियर (म.प्र.)—इस साल समस्त जैन समाज को ब्रह्मचारी झमकलालजी द्वारा आनंद उत्साह रहा, यहाँ २३ तो बड़े-बड़े जिनमंदिर हैं, ब्रह्मचारीजी के सभी कार्यक्रमों में समाज ने बड़ी रुचि से लाभ लिया, आत्महित के लिये प्रयोजनभूत दृष्टिकोण आदि का महत्व समझाया, समाज ने बहुत उपकार प्रगट किया।

बीना (म.प्र.)—ब्रह्मचारी रमेशचंद्रजी जो टेपरील मशीन द्वारा चारों अनुयोग के शास्त्र पर स्वामीजी के प्रवचन सुनाते हैं, शास्त्रसभा, शंका-समाधान, जैन शिक्षण कक्षा आदि कार्यक्रम प्रतिदिन ८ घंटे तक चलाते थे। बीना बजरिया समस्त जैन समाज में नई चेतना आयी

एवं बहुत प्रसन्नता प्रगट की। सर्वज्ञ-वीतराग कथित सुख के मार्ग में कैसे लगना ? आपने सुंदर ढंग से समझाया।

सिवनी (म.प्र.)—समस्त जैन समाज के आमंत्रण से पंडित श्री धन्नालालजी (लश्कर) पधारे थे, प्रतिदिन चार बार सारगर्भित अन्वेषणपूर्ण प्रवचन देते थे, जिनेन्द्रकथित आध्यात्मिक रहस्य समझने के लिये श्रोताओं में भारी आकर्षण हुआ। आपने यहाँ स्वाध्याय मंडल की स्थापना करायी। विशाल जलयात्रा पश्चात् क्षमावाणी महापर्व में जिनेन्द्र भगवान की विराट शोभायात्रा का आयोजन किया गया, भगवान के रजतरथ को पंडितजी ने सारथी बनकर आगे बढ़ाया। रात्रि में जैन समाज द्वारा विद्वान पंडित श्री कुंदनलालजी की अध्यक्षता में पंडितजी को सिवनी की शान दर्शक उन्नत जिनमंदिर के चित्र का सम्मान-पत्र समर्पित किया गया। इस अवसर पर श्री देवचंदजी कौशल ने स्वागत-गीत पढ़ा, श्री विजयकुमार कौशल ने कहा कि श्री पंडित धन्नालालजी को जितना धन्यवाद दिया जाय कम है, जैनधर्म के व्यापक प्रसार के लिये आप जैसे उच्चकोटि के विद्वान का मार्गदर्शन उपयोगी है। श्रीमान सेठ विरधीचंदजी ने सोनगढ़ दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि—हमें धर्म की सच्ची दिशा से अवगत होने का इष्ट अवसर दिया है, उस प्रेरणा का सम्मान करता हूँ। स० सिं० कोमलचंदजी द्वारा आभार प्रदर्शन किया गया। याद रहे कि सिवनीनगर जैनों का बड़ा केन्द्र होने से निकटवर्ती स्थानों से साधर्मी बन्धुओं ने आ-आकर अपूर्व धर्मलाभ लिया, छिंदवाड़ा, नागपुर, करेली, जबलपुर आदि अनेक स्थलों के प्रतिनिधियों के आग्रह भरे आमंत्रण पर पर्व समाप्ति बाद पंडितजी वहाँ पधारे।

विजयकुमार कौशल, प्रधान मंत्री
दिगम्बर जैन पंचान, सिवनी (म.प्र.)

(शेष समाचार अगले अंक में)

जयपुर में

वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा-बोर्ड की स्थापना

श्री टोडरमल स्मारक भवन समिति द्वारा गठित पाठय-समिति की मीटिंग सोनगढ़ में दिनांक २२-८-६८ से २३-८-६८ तक हुई, जिसमें समिति के सदस्य एवं विशेष आमंत्रित महानुभावों में निम्नलिखित उपस्थित थे:—

श्री रामजीभाई माणिकचंद दोशी, श्री पंडित हिम्मतलाल जेठालाल शाह, श्री खीमचंद जेठालाल शेठ सोनगढ़, श्री पंडित फूलचंदजी सि. शा. बनारस, श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल जवेरी बम्बई, श्री पूरनचंदजी गोदीका जयपुर, श्री युगलकिशोरजी 'युगल' कोटा, श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर, श्री पंडित हिम्मतलाल छोटालाल जोबालिया बम्बई, श्री ब्रह्मचारी चन्दूभाई सोनगढ़, श्री ब्रह्मचारी हरिभाई सोनगढ़, श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंदभाई सोनगढ़, श्री पूनमचंद छाबड़ा इंदौर, श्री अमोलजी बंधु अशोकनगर, श्री नेमीचंदजी पाटनी जयपुर, श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री जयपुर आदि।

१- जिसमें प्राप्त पाठ्यक्रम-सामग्री पर विचार किया गया तथा उचित संशोधन के साथ स्वीकृत की गई, परिमार्जन के लिए विद्वानों को सोंपी गई तथा आगामी कार्य को विभाजन कर विद्वानों को बाँटा गया और उनसे सविनय निवेदन किया गया कि वे शीघ्र ही उक्त कार्य को पूरा कर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें।

२- उक्त पाठ्यक्रम की परीक्षा लेने हेतु एक परीक्षा-बोर्ड का गठन किया गया है, जिसका नाम वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा-बोर्ड रखा गया है। इसके लिए समिति गठित की गई है।—तथा एक विधान निर्मात्री उपसमिति गठित की गई है, जो नियमावली तैयार कर शीघ्र ही बुलाई जानेवाली समिति की मीटिंग में प्रस्तुत करेंगे।

३- वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा-बोर्ड का मुख्य उद्देश्य वीतराग विज्ञान के अनुरूप धर्म-शिक्षण का प्रचार व प्रसार करना है।

नेमीचंद पाटनी

मंत्री, श्री टोडरमल स्मारक भवन,

ए-४, बापूनगर, जयपुर (राज.)

पंडित बनारसीदासजी कृत—'समयसार-नाटक' एवं

पंडित टोडरमलजी कृत—'मोक्षमार्गप्रकाशक' (द्वितीयावृत्ति)

को

सुंदर ढंग से प्रकाशित करने का निर्णय किया गया है। जो सज्जन १.२५ (सवा रुपया) प्रति पुस्तक के हिसाब से अग्रिम भेजकर अपना आर्डर लिखवा देंगे उन्हीं को पुस्तकें भेजी जा सकेंगी। अत: निवेदन है कि—मुद्रणकार्य प्रारंभ होने से पूर्व ही अपना आर्डर एवं अग्रिम राशि भिजवा दें। पुस्तकें लागत मूल्य में या उससे भी कम में दी जायेंगी। यदि विभिन्न नगरों के मुमुक्षु-मंडल एकसाथ अपने आर्डर भिजवायें तो व्यवस्था में सुविधा रहेगी।

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

* सुरुचिपूर्ण प्रकाशन *

१	मुक्ति का मार्ग	०.५०	८	द्रव्यसंग्रह	०.८५
२	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५	९	समयसार कलश-टीका	२.७५
	'' '' '' भाग-२ (प्रेस में)		१०	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
	'' '' '' भाग-३	०.५०	११	छहढाला (सचित्र)	१.००
३	चिद्विलास	१.५०	१२	नियमसार	४.००
४	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००	१३	अध्यात्म-संदेश	१.५०
५	जैन बालपोथी	०.२५	१४	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
६	समयसार पद्यानुवाद	०.२५	१५	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
७	प्रवचनसार	४.००			

प्राप्तिस्थान :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :
मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)